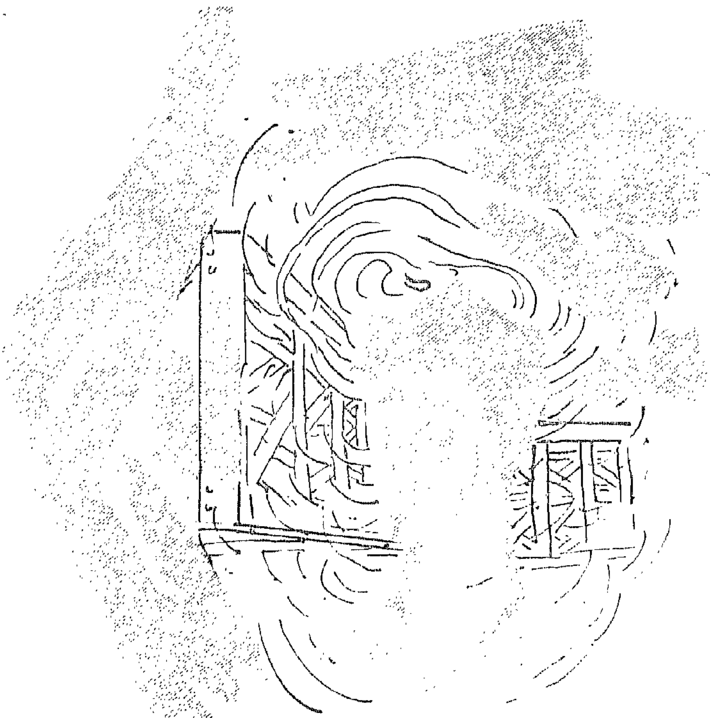
कुहासा

'कुहासा' बंगला-लेखक श्री प्रेमेन्द्र मित्र के उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। इसके चित्रण में कलाकार की असाधारण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। कथानक असामान्य परिस्थितियों पर आधारित है, जिसपर कलम चलाना सहज नहीं। चिर-विस्मृति की लम्बी चादर यदि किसी युवक के मन-मस्तिष्क पर एकाएक ऐसी छा जाए कि वह अपने अतीत से बिल्कुल कट जाए—बहुत सिर खुजलाने पर भी जो समय से अपना ताल न बिठा सके, उसके अन्तर्द्वन्द्व की कल्पना कीजिए : कितनी घुटन, कितनी बेचैनी होगी उसके अन्दर! कितना हाहाकार उठेगा उसके अन्तर्मन की भित्तियों से। ऐसे व्यक्ति को, जिसे आंखों का प्रकाश प्राप्त है, मस्तिष्क पर का दमघोट कुहासा कितना दुःसह होगा! ···इसपर सामाजिक क्षेत्र में उसका पदार्पण · मित्र-परिवार से उसका लगाव···फिर एकाएक भूत और वर्तमान का संघर्ष उसके लिए पाप और पुण्य का संघर्ष बनकर आता है, जो देखते ही बनता है।

निस्सन्देह 'कुहासा' हिन्दी की श्रीवृद्धि में सहायक सिद्ध होगा।

कुहासा



कुहासा

प्रेमेन्द्र मित्र

राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली-६

अनुवादक : हंसकुमार तिवारी

मूल्य : दो रुपये पचास
प्रथम संस्करण : अगस्त
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज
मुद्रक : युगान्तर प्रेस

१

गाड़ी की चाल धीमी हो आई''दोनों ओर अनगिनत पटरियों का उलझा हुआ जमाव ; तरह-तरह के इंजन, मुसाफिर और मालगाड़ियों का बेतरतीब जमघट। ज़रा देर उधर को देखते रहने से मन में एक खुशी भरा भय जग आता। अपनी ही बनाई मशीनों की इस दुनिया में खुद आदमी ही निरा बेबस, निहायत नाचीज़-सा लगता है। गाड़ी धीमे-धीमे चल रही थी। रह-रहकर पांवों तले से शाखा लाइनें बड़े-बड़े, काले अजगरों जैसी किलबिलाती हुई तेजी से खिसकती जा रही थीं। दूर पर बजती हुई इंजनों की सीटियां, एक से दूसरे डब्बे की टकराहट, गाड़ी के पहियों की आवाज, सब मिल-जुलकर एक अनोखा ही शब्दलोक! —मनुष्य के कंठ की आवाज़ वहां अर्थहीन है।

स्टेशन के पच्छिम का ओवरहेड ब्रिज विशाल विजय-तोरण की तरह स्वागत में खड़ा था। गाड़ी उसके नीचे से आवाज गुंजाती हुई निकल गई। उसकी चाल अब और भी धीमी पड़ गई। प्लेटफार्म के किनारे कुलियों की कतार आग्रह भरे इंतजार में स्थिर खड़ी थी। गाड़ी स्टेशन के विराट् पेट में प्रवेश करने लगी।

अभी-अभी सवेरा हुआ। हावड़ा स्टेशन के अंदर अभी भी धुंधलका-सा था। सिर्फ ऊपर के रोशनदानों के कांच सुबह के सूरज की किरणों से झिलमिला रहे थे।

आज दिन लोगों को अवकाश की कमी है और मन भी उनका शायद जड़ हो गया है। ऐसा न होता तो विशाल स्टेशन की एक अपूर्व

महिमा उनके मन को तो छूती। महज़ ज़रूरत के लिए बनी हुई एक इमारत के रूप में नहीं, प्रयोजन से परे की एक व्यंजना से ईंट और लोहा-लक्कड़ की यह बनावट उनके मन को आंदोलित कर सकती थी।

है यहां सभी कुछ, मंदिर की ध्यानमय गंभीरता, धुमेली रोशनी में अनेक मनुष्यों के मिलन का रहस्य, मशीनों की दुनिया के इस मंदिर में गति के देवता के मूर्त स्वरूप को अनुभव करके अचरज और आनन्द से सन्न रह जाना पड़ता है। लेकिन जीने की जिल्लतें झेलते हुए सच ही आज आदमी को समय नहीं रह गया है। उसने पुराने देवता की उपेक्षा की है और नए देवता को ढूंढ़कर वह पा नहीं सका है।

गाड़ी आकर खड़ी हो गई। सारा प्लेटफार्म भीड़ और शोरगुल से अचानक मुखर हो उठा।

गाड़ी मानो ज़िंदगी का रूपक है। अनगिनत लोग कुछ घंटों के लिए एक जगह आ जुटे थे और पूरा परिचय भी न हो पाया कि जुदा होने लगे।

बोझा लेने की जल्दी में कुलियों में रेल-पेल होने लगी। पता नहीं क्यों, तमाम गाड़ी आज खाली ही आई। किसी भी डब्बे में एक-दो से ज्यादा आदमी नहीं उतर रहे थे।

ड्यौढ़े दर्जे के एक डब्बे में दाखिल होने के लिए कई कुली आपस में धक्का-मुक्की कर रहे थे। डब्बे में महज़ एक ही मुसाफिर। गाड़ी लग चुकी थी, फिर भी उसे मानो उतरने की जल्दी न थी। वह सूनी आंखों से प्लेटफार्म की तरफ ताकता हुआ अपनी सीट पर बैठा था।

एक कुली डब्बे में घुस गया और एक बड़े-से बक्स को एकबारगी नीचे उतारकर बोला, 'गाड़ी होगी न बाबूजी ?'

वह आदमी मानो होश में आया। अचानक उठ खड़ा हुआ। और डब्बे के खुले दरवाज़े से नीचे उतर गया।

उस भलेमानस का रवैया देखकर कुली तो दंग ! उसने नगों का ख्याल भी न किया और चल पड़ा।

कुली के पुकारने पर वह मुड़कर खड़ा हो गया । कुली ने पूछा—यह सामान ले कहां जाया जाए ?

—सामान !—मानो बहुत परेशान-सा होकर उसने चारों तरफ देखा फिर आजिजी से बोला—मेरा कोई सामान नहीं ।

कुली आपस में एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे । जब से वे कुलीगिरी कर रहे थे, शायद ही ऐसी कोई घटना घटी हो उनकी जानकारी में । लेकिन यह समझते उन्हें देर न लगी कि इसमें उन्हें लाभ ही है । फिर भी शायद निश्चित हो जाने के ही खयाल से एक ने पूछा कि यह सामान आपका है या नहीं ?

सामान में से एक बक्स नीचे उतारा जा चुका था, उसकी ओर ताककर उस आदमी ने गर्दन हिलाई । अब कुलियों ने मानो उसे इजाजत दे दी- तो फिर जाइए । वह फिर चल पड़ा । जब तक वह भीड़ में ओझल नहीं हो गया तब तक आशंका से कुली लोग उसे देखते भी रहे, शायद । मामूली भले आदमी जैसी शकल । चेहरे पर कोई अस्वाभाविक छाप नहीं । जरा कैसा तो अनमना-सा, कैसा एक खोया-खोया-सा भाव । कुलियों के लिए इतना समझ सकना संभव भी न था ।

सामान लावारिस पड़ा रहा । एक कुली ने इशारे से अपने साथी को बुलाकर कानों-कान कुछ कहा ।

ज्यादा कुछ सामान भी न था । एक बक्स तो उतर ही चुका था । उसी से मझोले कद का एक सूटकेस और एक बैग निकला ।

सब कुछ ले-देकर वे चटपट चंपत हो गए होते, पर उनमें से एक को एकाएक कुछ शुबहा हो आया । उसकी उमर पक गई थी, जमाने से कुली का काम करते-करते उसे बहुत-कुछ तजर्बा हो चुका था ।

जो कुली उम्र में उससे छोटा था, सामान उठाने के लिए माथे पर रखने को अपनी चादर उमेठ रहा था। उसे छूकर उसका ध्यान खींचते हुए दूसरे ने जो कुछ कहा, उसका आशय यही था कि दाल में कुछ काला मालूम होता है। इस सामान को पुलिस के हवाले कर देना ही ठीक है।

नौजवान कुली इस बात से नाराज़-सा हुआ। बुड्ढे के डराने की खिल्ली उड़ाता और सामान को उठाने की कोशिश करता हुआ बोला—ऐसे दांव को मैं हाथ से निकलने नहीं दे सकता।

लेकिन बुड्ढे ने जो बात अब बताई उससे उससे उसका हौसला पस्त हो गया। सच ही तो है आखिर, वह आदमी यों ही सब छोड़कर चल दिया। अब ऐसा लगा जब उसने उसे पुकारा था और वह पलटकर खड़ा हुआ था, तो वह डरा-डरा-सा था। सो बुड्ढे की बात को हंसकर टाल जाने की गुंजाइश न रही। शायद ऐसा हो कि सामान में संदेहजनक ऐसा कुछ हो जिससे आफत में पड़ना पड़े। बुड्ढे कुली ने पहले भी ऐसा वाकया बहुत देखा है। कौन कह सकता है कि इस बक्स के अंदर कोई लाश नहीं है! गुंजाइश होती तो सामान को छोड़कर ही वे चल देते, लेकिन दूसरे कुलियों ने उतारते हुए देखा था। लिहाज़ा ज़िम्मेदारी से छुटकारे का उपाय न था। आखिर डरते-डरते सामान को उठाकर वे रेलवे पुलिस के दफ्तर में पहुंचा आए।

हम कह नहीं सकते कि वह लावारिस सामान अब तक रेलवे गोदाम में पड़ा है या नीलाम पर चढ़ा दिया गया। यह भी पता नहीं कि संदेह में उस सामान की छानबीन की गई या नहीं, और की भी गई तो उनमें से क्या निकला। उस बक्स के रहस्य का कोई किनारा न हो सका।

२

जो भलामानस मुसाफिरों की भीड़ में गायब हो गया था, वह स्टेशन के विशाल हाल में फिर दिखाई पड़ा। निगाह नीचे झुकाए अनमन-सा वह स्टेशन के गेट की तरफ जा रहा था।

प्लेटफार्म के दरवाज़े पर ज़रा देर के लिए उसे परेशान-सा देखा गया था। लेकिन अंत तक इस-उस जेब की तलाशी लेने पर एक टिकट उसे मिल गया था। उसने टिकट को देखा नहीं और टिकट-कलक्टर को थमा दिया। टिकट-कलक्टर ने एक हल्की निगाह उसपर डाली और उसे छोड़ दिया। दरअसल टिकट पर किसीने गौर ही नहीं किया। किया होता, तो यह कहानी इतनी उलझी हुई न भी होती शायद।

सुबह की धूप पूरब के दरवाज़े से आड़े-आड़े आकर तुरत धुले हुए चिकने फर्श पर चांदी-सी चमचमा रही थी। आंखें चौंधिया जातीं। शायद नीचे की तरफ और न ताक सका, इसीलिए उसने गर्दन ऊपर उठाई। तीखी रोशनी में आंखें चौंधिया गईं और सारा स्टेशन उसे अंधेरा दीखा। फिर भी यह अंधेरा उसके मन के अंधेरे के मुकाबले कुछ न था।

इस अंधेरे में तो फिर भी सारी चीज़ें धुंधली-धुंधली-सी चीन्ही जा सकती थीं, लेकिन उसका मन तो विस्मृति की गाढ़ी स्याही से पुता हुआ था। अतीत को पहचानने की कोई भी निशानी उसमें कहीं न थी।

उस आदमी की सही-सही बातें अब बताई जा सकती हैं। थोड़ी

ही देर पहले इस आदमी ने दिमाग के अन्दर एक अजीब-सा दर्द होने के साथ-साथ अपने-आपको गाड़ी के एक डिब्बे में ईजाद किया।

भय और विस्मय से दंग वह देखता रहा कि सारे जाने-चीन्हे स्टेशनों को छोड़ती हुई गाड़ी हावड़ा की तरफ बढ़ रही है। आसपास की दुनिया उसे चीन्ही-पहचानी ही लगी। उसे लगा, इस रास्ते से उसकी यह यात्रा पहली नहीं है। पहले भी वह इन गांवों, मैदानों, कल-कारखानों के बीच से होकर गया है।

लेकिन कब ? इस जानी-पहचानी दुनिया में अचानक कैसे वह अपना संपूर्ण परिचय एकबारगी भुला बैठा है। यह सोचकर आतंक से वह मन ही मन सिहर उठा। सारा इतिहास मानो उसकी स्मृति के दरवाजे पर इंतजार में बैठा है, मानो थोड़ी-सी कोशिश करते ही उसे छुआ जा सकता है, मगर छुआ जा नहीं रहा है। दिमाग के दर्द से यह दर्द मानो और भी तीखा हो! पत्थर का कठोर दरवाजा अड़ा खड़ा है। उसमें कहीं भी जरा सूराख नहीं, न ही जी-जान से लगकर उसे हिलाने की गुंजाइश। डर से वह पसीने से नहा उठा। एक बार जी में आया, मन की यह जड़ता जरा देर की है। थोड़ी देर चुप रह जाने से ही जाती रहेगी। डब्बे की खुली खिड़की पर हवा के तीखे झोंके में अपना सिर टेककर वह चुप बैठा रहा। लेकिन बेकार! पीछे का घना अंधेरा वैसे का वैसा रहा। उस अंधेरे को चीरकर अंदर दाखिल होने की शक्ति मानो अतीत की किसी किरण में नहीं। बेचैन होकर वह डब्बे के अंदर चहलकदमी करने लगा। गाड़ी क्रमशः हावड़ा की तरफ बढ़ती चली जा रही थी। खिड़की में से बाहर तार का खंभा दीखा। हावड़ा सिर्फ आठ मील रह गया था। तो क्या सच ही उसकी स्मृति बिल्कुल नष्ट हो गई है। इस इतनी बड़ी दुनिया में नन्हे शिशु-सा असहाय होकर फिर से क्या उसे जीवन का नया पृष्ठ खोलना पड़ेगा ?

चहलकदमी करते-करते थककर फिर वह बेंच पर बैठ गया। माथे का दर्द बेशक कुछ घट गया था, मगर उतनी ही ज्यादा बढ़ गई थी मन की बेचैनी। मन की ऐसी हालत में सहेजकर कुछ सोच सकना मुमकिन न था। फिर भी एक बार उसने बिखरी हुई भावनाओं को समेटने की कोशिश की। इस डब्बे में उसके होने का कोई न कोई कारण जरूर है। किस कारण से और कहां जाने के लिए वह इस गाड़ी पर सवार हुआ, अगर यह याद आ जाए तो यह रहस्य बहुत कुछ साफ हो सके।

जो स्टेशन गुज़र चुके थे, उसने उन सबका नाम याद करने की कोशिश की। लेकिन खास कुछ याद न आया।

श्रीरामपुर से पहले के किसी भी स्टेशन की उसे याद नहीं। और श्रीरामपुर स्टेशन में तो वह हर्गिज इसपर सवार नहीं हुआ। वहां तक तो उसकी याददाश्त खासी तेज़ है, लेकिन उसके बाद अंधकार। उसी अंधेरे में इस गाड़ी से वह नवजात शिशु-सा बाहर निकला है।

गाढ़ी निराशा से उसने आंखें मींच लीं। इधर गाड़ी स्टेशन में दाखिल हो रही थी।

हावड़ा स्टेशन से निकलकर वह कहां जाएगा, इसके बारे में कुछ भी तो नहीं कर सका। विशाल नगरी नींद से जगकर सुबह की रोशनी में चंचल हो उठी थी। गंगा के दोनों किनारे जन-प्रवाह, कहीं आवर्त्त। एकाएक ऐसा लगता, मानो यह जनता ही सत्य है, इसके अंदर प्रत्येक मनुष्य की मानो अलग सत्ता नहीं। मगर बात तो ऐसी है नहीं। एक-एक आदमी एक-एक स्वतन्त्र कहानी की धारा लिए चल रहा है। उसकी तरह और कोई भी रात की सुषुप्ति में उस कहानी के ओर-छोर को खो नहीं बैठा है। आदमियों के इस घने जंगल में एक वही नामहीन, गोत्रहीन है।

अचानक उसे टिकट की याद आ गई। टिकट में तो जरूर ही यह लिखा होगा कि वह किस स्टेशन से गाड़ी पर सवार हुआ। उस नाम का पता चल जाए, तो सारी बातों की याद पड़ सकती है। लेकिन उसका यह उछाह दूसरे ही क्षण पस्त पड़ गया। टिकट को तो बिना देखे ही वह प्लैटफार्म पर दे आया। अब तक तो टिकट कलक्टर गेट पर से ज़रूर चला गया होगा। उसे किसी कदर ढूंढ़ निकाला भी जाए, तो इतने-इतने टिकटों में उसका टिकट कौन-सा है, यह जानना कैसे सम्भव है, सो निरुद्देश्य बढ़ता हुआ वह हावड़ा के पुल पर पहुंचा। दिल उसका बैठ-सा गया था। अपना परिचय ढूंढ़ निकालने की उसने उम्मीद ही छोड़ दी। शहर के इस उमड़े हुए जन-समुद्र में यह अकेला था, सब से अलग। इस अकेलेपन से डरावनी अनुभूति शायद ही दूसरी हो। दिल के अन्दर का भयंकर सूनापन मानो दम घोट रहा हो। बाहरी दुनिया में इतने-इतने रूप-रंग, लेकिन कोई सांत्वना नहीं—चूंकि स्मृति के भंडार में उन रंगों को सिलसिले से सजाने का उपाय नहीं, इसीलिए सब कुछ मानो बेमानी हो गया है।

मगर ताज्जुब तो यह था कि कुछ भी उसे अनचीन्हा नहीं लग रहा था। इस पुल से मानो कितनी ही बार वह आया-गया है। पुल के पार, शहर के बाट घाट का नाम भी वह याद कर सकता है, लेकिन ठीक उसी तरह, जैसे कि किताब की पढ़ी कहानी हो, कुछ के भी साथ उसका व्यक्तिगत सम्पर्क कभी जैसे न रहा हो। मानो उसके शरीर के अन्दर इतने दिनों तक कोई दूसरा आदमी रहा और अपनी सारी निशानियों को धो-पोंछकर चला गया। और वह जैसे अचानक किसी किराए के मकान में आ पहुंचा है। पहले के किराएदार के बारे में जानने का कोई उपाय ही नहीं।

अब वह अपने को पहचानने की कोशिश करने लगा। उमर कितनी

होगी ? पुल पर पहुंचने से पहले रास्ते के किनारे की एक दूकान पर आईने में उसने अपनी शकल देखी थी, ऐसा नहीं लगा कि तीस से ज़्यादा होगी उमर। पक्षपात न करके देखा जाए, तो शकल वैसी बुरी भी न थी। पहनावे पर गौर करने से लगता है, इसके पहले जो उसमें रह गया है, उसकी भी हालत निहायत खराब न थी। जेब के मनीबैग से दस के चार-पांच नोट और कुछ खुले हुए पैसे निकले। सारी जेबों की बार-बार तलाशी लेने के बावजूद ऐसा कोई कागज़-पत्र न निकल सका जो उसके बीते जीवन के चिह्न-स्वरूप हो। अपने बारे में सोच-सोचकर इससे ज़्यादा कुछ वह नहीं जान सका। अपना इतना ही परिचय लेकर नई धरती पर उसे जीने की कोशिश करनी पड़ेगी। मरने की गुंजाइश न थी, इच्छा भी नहीं। आज से एक अलग ही अस्तित्व बनाकर उसे लोगों के बीच अपने दिन गुज़ारने पड़ेंगे। मगर किस तरह ? भविष्य की सोचकर भय से सचमुच ही वह सिहर-सिहर उठता।

तो क्या अपने को जानने की सच ही कोई तरकीब नहीं रह गई ? चलते-चलते उसके जी में आया, रास्ते में शायद किसी जाने-पहचाने आदमी से भेंट भी हो जाए। शायद हो कि वह खुद उसे न भी पहचाने, पर वही उसे पुकारकर उसके मन पर की यवनिका को हटा दे। और बड़ी उत्सुकता से चलने वालों के चेहरे पर गौर करता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। चलने वाले कतराकर निकल जाते।

उसका मन फिर से इस नए जीवन के पहले कुछ क्षणों पर पहुंचकर अतीत के खोए हुए सूत्र की खोज में लग गया। श्रीरामपुर ! क्या वह श्रीरामपुर से आगे किसी स्टेशन से सवार हुआ है ? कौन कह सकता है कि वहां उसके स्त्री-बच्चे उसका इन्तज़ार कर रहे हैं या नहीं ? कौन जाने प्रदेश के किस दूर के नगर में, किस अजाने गांव में उसका वास है ! कल्पना की किस्म-किस्म की तस्वीर वह मन ही मन बनाता। वह ज़रा

अचंभे में भी आ जाता कि उसके मन में कल्पना का यह उपकरण है।

उसकी आंखों में झूल आता, सेवार से भरे पोखरे के चारों तरफ फूस के कुछ झोंपड़े। खजूर के कुंदों से पोखरे में बने कई घाट, उन्हीं घाटों में से एक पर ठुड्डी तक घूंघट काढ़े बर्तन मांजने के लिए एक युवती वधू आई है, साथ में नंग-धड़ंग एकशरीर लड़का। वधू खीझी-सी है। बच्चा और घूंघट, दोनों को एकसाथ सम्हालना बड़ा टेढ़ा मामला है। पानी से दोस्ती गाठने की कोशिश में मां से बाधा पाकर वह उसके घूंघट को हटाने में जुट गया है।

अजीब बात है। इतनी सारी चीजों के होते उसकी आंखों में यही दृश्य क्यों जाग उठा, पहले वह समझ नहीं सका। तो क्या सच ही इस दृश्य के साथ कहीं कोई सम्बन्ध है उसका ?

सुख की यह कल्पना, किंतु ज्यादा देर नहीं टिकती। याद आया, गाड़ी में आते हुए उत्तरपाड़ा के बाद कहीं जैसे ऐसा एक दृश्य उसने देखा है।

कौन जाने, शायद उसका अपना प्यारा कोई है ही नहीं। इस संसार में वह वास्तव में सगा-सम्बन्धी-विहीन है। लेकिन फिर भी अपनी तीस साल की ज़िंदगी को उसने आखिर किस सूत्र से बांधकर रक्खा था ? इन तीस सालों के सोच-विचार, आशा, सपने, वेदना---सब कहां गए ? शायद आत्मपरिचय के साथ-साथ वेदना का कोई गहरा जख्म भी विस्मृति के अंधेरे में खो गया है। कौन बताए कि वह वेदना है क्या ! बिजली जैसी तीखी चमक वाली कोई नारी कभी उसके जीवन में आई थी क्या ! जिसे देखने से आंखें चौंधिया जातीं, छूने का साहस सम्हालने से ज़िंदगी जलकर राख हो जाती ! या कोई बेबस मौत ? अंधेरे के उस पार से कमज़ोर हाथ बढ़ाकर किसी अत्यन्त प्रिय व्यक्ति ने उसके सामने जीवन के छिन्न छोर को जकड़ने की बेकार कोशिश की—और, वह बेबस खड़ा

महज़ देखने को मजबूर हुआ ! उसके अतीत जीवन में उस मौत की राह के राही की आखिरी विनती ने क्या सारे आकाश को सदा के लिए म्लान कर रखा था ?

असम्भव सारी कल्पनाएं। सत्य इनमें से कुछ भी नहीं। शायद बड़ा मामूली-सा रहा हो जीवन उसका। उसका जीवन हर रोज़ एक चीन्ही हुई राह पर चक्कर काटता रहा है। कोई रोमांचकर सुख भले न हो, कोई उत्कट दुःख भी न था।

शायद बाहर आते वक्त कल भी स्त्री ने कहा हो—जैसा भुलक्कड़ है मन तुम्हारा, याद रहेंगी ये बातें, जो मैंने कहीं ?

गंभीर बनने की चेष्टा करते हुए उसने कहा—भूलने को जो चाहे भूलूं, एक चीज याद रहेगी।

कौतूहल से स्त्री ने पूछा—क्या ?

हंसकर वह बोला—यह मुखड़ा।

गुस्से का बहाना-सा करके स्त्री ने कहा—रहने भी दो, बहुत हुआ। यह उल्लू जैसी काली-कलूटी शकल तुम्हें याद रहेगी ! रास्ते में कितने खिले मुखड़े दीखेंगे।

कल्पना की दौड़ बीच ही में थम जाती। अवाक् होकर वह सोचने लगा, आखिर मैं सोच क्या रहा हूं यह ? स्मृति तो जा ही चुकी है, दिमाग भी खराब हो गया क्या ? विस्मृति के काले परदे को कल्पना के रंग से रंगाने की आखिर हास्यकर कोशिश क्यों ?

हावड़ा का पुल पार करके वह हरीसन रोड पर आ निकला। चलने का कोई उपाय नहीं, मगर रुके भी तो किस लिए ? व्यापार के केन्द्र से गुज़रने वाली यहां की यह सड़क वैसी ही बेहया और बदसूरत है, जैसा कि पैसों के मामलों में व्यापारियों का मन होता है। मनुष्य के मन की सारी स्निग्धता को गायब करके जिस प्रकार यहां लोभ प्रबल हो उठा

है, उसी प्रकार आसमान और सूरज को छिपाने के लिए यहां के भद्दे मकानों ने अपना सिर ऊपर को उठाया है।

इतनी दूर के रास्ते को ट्राम या बस से पार करने की इच्छा हुई उसकी। लेकिन जैसी हालत थी मन की वैसे में पांव-पयादे चलना ही अच्छा था। चलते-चलते तो फिर भी एक सिलसिले से कुछ सोचा जा सकता है।

भीड़ में से गुज़रते हुए अब वह अपने मनोभाव की बात सोचने लगा। लोभ की ऐसी कुरूपता के प्रति उसे इतनी नफरत कहां से आई? यह निस्संदेह उसे अपने पूर्वजीवन से मिला। यानी उसकी प्रवृत्ति और प्रकृति नहीं बदली है—मन के पुराने ही सांचे में एक नई चेतना लेकर उसे काम करना होगा। लेकिन मन के पुराने सांचे को पूरी तरह पहचानने का मौका भी तो उसे नहीं। उसे घटना और पारिपार्श्विक की ऐसी ही प्रतिक्रिया का इन्तजार करना पड़ेगा। लेकिन सच ही क्या उसकी प्रवृत्ति और प्रकृति जैसी की तैसी है?

बहुत सोच-विचारकर वह हरीसन रोड के एक होटल में ठहर गया। पास में अभी रुपए थे—कुछ रोजों तक आराम करने और सोचने का समय भी मिल जाएगा। अपने भाग्य को अडिग रूप में कबूल कर लेने के सिवाय दूसरा चारा नहीं, उसने तब तक के लिए यह खूब समझ लिया।

इस भरी जवानी में जीवन के पन्नों पेर नए सिरे से उसे अपनी कहानी लिखनी पड़ेगी—यही शायद उसका अदृष्ट है। इसके खिलाफ कुछ करना बेकार है।

होटल के रजिस्टर में उसका नया नामकरण हुआ। जो भी उस समय मन में आ गया, वही नाम उसने लिख दिया। होटल के लोग उसे प्रद्योत वसु के नाम से जानते हैं।

होटल में कमरा खाली नहीं था। एकबारगी चारतल्ले पर उसे एक बहुत ही छोटा-सा कमरा मिला। किराया चूंकि कम था इसलिए उसे एतराज़ न हुआ। बाद में उस कमरे के लिए उसे खुशी ही हुई। शायद यह कमरा पाने में भी उसके भाग्य का ही हाथ है।

चारतल्ले पर महज़ एक यही कमरा था। खिड़की खोल देने से उत्तर-दक्खिन शहर का बहुत-कुछ नज़र आ जाता था। मनुष्य के बसे हुए इस जंगल को देखकर उसे अपनी अवस्था की मानो अधिक उपलब्धि होती थी। इसी जंगल में उसके खोए हुए जीवन के पांवों की निशानी थी।

रात हुई। सोए हुए नगर की जलती हुई बत्तियां मेघ से ढकी रात के गाढ़े अन्धेरे को चीरकर मानो कमज़ोर मनुष्यों की प्रार्थना को तारों तक पहुंचाना चाह रही हों। लेकिन उसकी विस्मृति के समान ही चारों ओर फैली थी काले बादलों की दुर्भेद्य यवनिका।

प्रद्योत को लगा, सच ही कहीं बहुत दूरी पर किसी खिड़की पर इन्तजार में खड़ी किसी वधू की आंखें भी मानो दीप बनकर संकेत करना चाह रही हों। उसके स्वामी लौटे नहीं—किसी नन्हे बच्चे का पिता विस्मृति के पार से अपने बच्चे की रुलाई पर स्नेह-आश्वासन नहीं दे पाता।

सोने की इच्छा से उसने सामने की खिड़की बंद कर दी। उसे मन में आशा हुई, कल सवेरे शायद नींद के साथ-साथ मन का यह कुहरा भी कट जाएगा; अपने बिखरे हुए जीवन की भूली कड़ी मिल जाएगी।

३

सुबह बाहर के कलरव से उसकी नींद खुली। लेकिन बिस्तर छोड़ने की इच्छा नहीं हो रही थी। उसने समझ लिया नींद उसके मन के बंद दरवाज़े को खोल नहीं सकी। उसकी स्मृति का कमरा वैसा ही खाली पड़ा है।

नई दुनिया में वह महज एक दिन का शिशु था। इस एक दिन की सब बात उसे याद आती परन्तु उसके बाद ही गाढ़ी अंधेरी पृष्ठभूमि। उस अंधेरे में रोशनी की कहीं कोई लकीर नहीं। प्रद्योत का मन गहरी निराशा से भर गया। सुबह जगकर वह करे क्या? शारीरिक जरूरतें पूरी करने के सिवाए करने को कुछ भी तो नहीं। जीने का मतलब सिर्फ दैहिक प्रयोजन मिटाना भर नहीं—इस बात को और किसी प्रकार से इतनी गहराई से वह उपलब्ध कर सकता या नहीं, उसे संदेह है। उसे ऐसा नहीं प्रतीत होता कि स्मृति की धारावाहिकता के सहारे जीवन को एक विशेष रूप देने के सिवाय और किसी बात में अस्तित्व की सार्थकता है। और वह उसी सार्थकता से वंचित है। अपने-आपको निरा निरर्थक लगता। केवल मन के सूने पट को लेकर जीने में कोई आनंद भी तो नहीं। मन में आता, स्मृति के नाश के साथ-साथ उसका अस्तित्व भी मिट गया होता तो अच्छा था—सूने मन का भार न ढोना पड़ता। वह खूब समझने लगा था कि अपने पुराने जीवन से अब कभी परिचय होने का नहीं। इतना ही उसे पता है कि उसके इस शरीर में बहुत दिनों तक और कोई रह गया है। लेकिन इस शरीर में जिसकी समाधि है,

स्मृतियों के स्तरों को हटाकर उसका पता कभी नहीं मिलने का। यह सोचकर उसे डर लगता कि नई चेतना वाली यह ज़िंदगी शायद लम्बी होगी। पृथ्वी की और किसी चीज़ से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं, वैसे जीवन के भार को ढोने से बड़ा अभिशाप दूसरा नहीं हो सकता।

लेकिन यह गहरी हत आशा उसके मन में स्थायी नहीं होती। ज्यों-ज्यों बेला होती जाती, त्यों-त्यों उसका मन स्थिर होता जाता। रंगों की विविधता का उत्सव लिए उसके मन पर धीरे-धीरे वर्तमान हावी होता जाता। शायद यह समझकर उसके मन को कुछ-कुछ संतोष होने लगा है कि खोए हुए जीवन के पद-चिह्नों की खोज में हैरान होने से कोई लाभ नहीं। यदि विस्मृति का यह काला परदा आप ही आप हट जाए तो ठीक ही है। और अगर ऐसा सौभाग्य न हो तो उसे इसी जीवन को कबूल कर लेना है। सो इसके लिए उसे तैयार होना है। प्यारे से प्यारे आदमी के शोक को भी भूलना पड़ता है। उसे अवश्य इससे भी ज्यादा कुछ करना है---अपनी मृत्यु के शोक को भी भुलाना है। मगर भूले बिना चारा भी क्या है ? ऐसा भी तो भरोसा नहीं कि इस अंधेरे में टटोलने से कुछ हाथ आएगा। उसे नई चेतना के इस जगत् का सामना करना ही पड़ेगा। जो दुनिया विस्मृति के अतल में डूब गई है, वह फिर कब ऊपर आएगी, इसका बेकार इंतज़ार न करके नए जीवन की नए सिरे से नींव डालने की कोशिश करनी पड़ेगी।

नए जीवन की पहली समस्या पैसों के अभाव के रूप में आई। पास में जो पूंजी थी, उसके सहारे होटल में ज्यादा दिनों तक तो नहीं रहा जा सकता। सो और-और चिंताओं के बीच गुज़र-बसर की फ़िक्र प्रद्योत के लिए बड़ी हो उठी।

अब तक वह यह नहीं सोच पाया है कि इन रुपयों के चुक जाने से पहले कौन-सा प्रबन्ध किया जा सकता है। अखबारों के विज्ञापन देखे,

कई जगह दौड़-धूप भी की, लेकिन कोई उम्मीद नहीं बंधी कहीं।

जैसे-जैसे उसकी पूंजी छीजने लगी, वैसे ही वैसे उसकी आशंका बढ़ने लगी। पास के ये कुछ रुपए खत्म नहीं हुए कि उसे बेसहारा होना पड़ेगा। ऐसी कोई जगह नहीं, जहां जाकर वह खड़ा हो सके। किसीसे मदद मिलने की भी उसे उम्मीद नहीं। इस अनजानी दुनिया में वह निःसहाय है।

उसे नए सिरे से जीवन का आरंभ करना है, लेकिन उसके लिए जो पहली ज़रूरत है, उसीका प्रबंध वह कहां से करेगा! संसार में अनगिनत लोग आपस में विभिन्न संबंधों से बंधकर बहुत-सी जगह घेरे फैले हुए हैं—अचानक बाहर से आकर उनके बीच जगह बना सकना गैरमुमकिन है।

गुज़ारे के लिए दुनिया में उसे कोई न कोई काम चाहिए। लेकिन इन कई दिनों में वह सोचकर इस फैसले पर नहीं पहुंच सका कि वह आखिर किस काम के लायक है। जिस जीवन को वह खो चुका है, उसमें वह क्या करता था, कौन जाने। नई चेतना में अभी तक किसी भी चीज़ के लिए उसे कोई अनुरक्ति नहीं हो पाई। शिक्षा-दीक्षा के लिहाज़ से वह वैसा गरीब नहीं। उसकी इस आत्मविस्मृति का एक यह विचित्र रहस्य है कि अपने को छोड़कर दूसरी बहुत ही बातें उसे याद हैं। इसमें उसे कोई संदेह नहीं कि कभी उसने विद्या हासिल की थी। और उस विद्या को वह भूला भी नहीं है।

यह जानकर अपने-आपपर ही वह अवाक् हो जाता है कि उसे कितनी बातों की जानकारी है। वह अपने ही लिए एक अंधेरा और अनाविष्कृत जगत्-सा है। उस जगत् को भली तरह देखा नहीं जा सकता। बाहरी दुनिया से संबंध के उसके सारे सूत्र भी छिन्न हो गए हैं—फिर भी उस अंधेरे में से बिखरा-बिखरा बहुत कुछ तिरता आता है।

लेकिन मन के ऐसे विच्छिन्न ऐश्वर्य के जरिए संसार में अपने लिए जगह बनाना आसान नहीं। अब तक वह ठीक भी नहीं कर पाया कि उसे क्या करना है।

कई रोज हुए उसके कमरे में एक और भले आदमी को जगह दी गई, बहुत ही दुबला-पतला आदमी; आसानी से उसकी उम्र का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। लगता है, किशोरावस्था पार करने के बाद से उसके शरीर का जरा भी इजाफा नहीं हुआ। सिर्फ चेहरे की रेखाएं ज़रा सख्त हो आई हैं। कमरे में जो एकांत था, वह भंग हो जाने की वजह से पहले रोज़ तो वह आदमी उसे बड़ा बुरा ही लगा। उससे बातें करने की इच्छा भी न हुई। उस भले आदमी को परिचय की जो थोड़ी-सी उत्सुकता थी वह भी उसकी उदासीनता से जाती रही।

लेकिन धीरे-धीरे मालूम हो गया कि आदमी बड़ा ही निरीह है। कोई झमेला नहीं। जब तक कमरे में होते, इस तरह से किताबों में डूबे रहते कि पता ही नहीं चलता, दूसरा भी कोई कमरे में है।

धीरे-धीरे दोनों का थोड़ा-बहुत परिचय भी हो गया। परिचय एक-तरफा ही हुआ। प्रद्योत अपने बारे में भरसक मौन ही रहा है। मन से कोई झूठी कहानी गढ़कर कहना उसे पसंद नहीं।

थोड़ा-थोड़ा करके अमल बाबू ने अपने बारे में बहुत कुछ बताया है। वे कुछ ऐसे कमजोर किस्म के आदमी हैं कि अचानक देखने से तो बड़े ही अपने-आपमें डूबे, दब्बू जैसे लगते हैं। लगता है, अपने चारों ओर चुप्पी की किलेबंदी करके वे अपने ही अंदर दुबके रहना पसंद करते हैं। लेकिन इसमें संकोच के सिवाय और कुछ नहीं। बाहर से चोट लगने की आशंका से ही ऐसे लोग अपने को अथाह साबित करना चाहते हैं। परंतु मनुष्य की सहानुभूति का जरा उत्ताप छू नहीं गया कि उनके चारों तरफ की खड़ी दीवार पल में बर्फ-सी गल गिरती है। बाहर की कठिनता की

आड़ में उनके कोमल हृदय मानो मनुष्य की समवेदना के लिए ही लालायित रहते हैं।

प्रद्योत के नये जीवन में अमल बाबू उसके पहले आत्मीय हुए। शायद ऐसे एक आदमी से पहले परिचय की उसे ज़रूरत थी। उनसे उनके जीवन की विविध बातें सुन-सुनकर पहले तो प्रद्योत को ईर्ष्या ही हुई। स्मृति की जिस लड़ी के बिखर जाने से उसका अस्तित्व अर्थहीन हो गया है, उसकी कोई कीमत उस आदमी के आगे नहीं। अमल बाबू तो अगर अपने को अतीत के प्रवाह से अलग रख सकें, तो जी जाएं मानो। उनकी जीवन-कथा बेशक मधुर न थी, पर कड़वी चाहे हो, दर्द-भरी चाहे हो, ऐसी एक जीवन-धारा से यदि जुड़ सके, तो प्रद्योत निश्चिन्त हो। वह जिस संकरे टापू में निर्वासित हुआ है, उसके चारों ओर लहराता है अंधकार का ओर-छोरहीन समुंदर। सारे संसार से अलग, श्रम की सार्थकता से वंचित इस टापू को उसे अकेले हरा-भरा कर लेना पड़ेगा। उसे नवीन रूप देने की ज़िम्मेदारी उसपर है। मगर यह शक्ति है क्या उसमें ?

शायद प्रत्येक मनुष्य सृष्टि के रहस्य से घिरा ऐसा ही एक-एक अलग टापू है ! प्रत्येक नवागत शिशु को धीरे-धीरे ऐसा एक स्वतन्त्र जगत् बनाना पड़ता है। लेकिन उसके पीछे बहुत-से लोगों की अभिज्ञता की पूंजी होती है। अनेक युगों की स्मृति की धारा उस टापू की माटी को उपजाऊ किए देती है। उसमें चारों ओर पड़ी होती हैं राह की रेखाएं। इसके सिवाय शिशु अपने संसार को पहचानने का समय पाता है। होश आने तक संसार से परिचय और लेन-देन की बहुतेरी राहें बन चुकी होती हैं। ऐसे निर्देश उसे मिल चुके होते हैं, जिनसे वह अपनी गति को ठीक-ठीक चला सके। उसके भविष्यत् की रूपरेखा बनी-बनाई ही रहती है, जहां-तहां थोड़ा-बहुत अदल-बदल भर उसे करना पड़ता है।

लेकिन पूरी चेतना लिए जिस स्वतंत्र जगत् में एकाएक वह आया है, वह दुनिया की आम राह से परे है। जो शिशु एकबारगी अनाथ होकर भी पैदा होता है, उसके भी चारों तरफ याददाश्तों का इतिहास बन जाता है। चेतना आने के पहले ही बाहरी दुनिया से उसका तरह-तरह का संबन्ध क़ायम हो जाता है। वह मानव-परिचय के दायरे में स्थान पा लेता है। प्रद्योत ऐसे यतीम बच्चे से भी बदनसीब है। इस दुनिया में होते हुए भी वह सब कुछ से बाहर है। धरती की चेतना से उसकी सत्ता का कोई लगाव नहीं; वह जिस जीवन का निर्माण करना चाहता है, उसका कोई सहारा उसे नहीं मिलने का। वह एक नवागत शिशु को मिलने वाले सारे सुअवसर से वंचित है, उसने महज़ बेबस अकेलापन ही पाया है!

और अमल बाबू ऐसे ही अकेलेपन की कामना करते हैं। अपने गुज़रे जीवन को वे भुला सकें तो मानो उन्हें जान में जान आए।

सुबह से ही अमल बाबू अपने सामान सहेज रहे थे। प्रद्योत ने पूछ-कर यह जाना कि आज वे घर जाएंगे।

लेकिन जब वह भोजन करके लौटा तो पाया कि सारा सामान खोल-कर अमल बाबू सिर पर हाथ रखे खाट पर उदास बैठे हैं। प्रद्योत ने उनकी तरफ अचरज से देखा। अमल बाबू हताश-से बोले—नः, तै किया कि अब न जाऊंगा।

फिर आप ही आप बोले—होगा भी क्या जाकर! मैं कोई किनारा न कर सकूंगा, यह बात उन्हें भी मालूम है और मैं भी समझता हूं। फिर इस नाटक की क्या आवश्यकता है?

इस बीच उनके गांव की बहुत-सी बातें प्रद्योत सुन चुका है। वही पुराना इतिहास दुःख का। लेकिन उसे अमल बाबू ने जिस रूप में अंगीकार किया है, उसमें नयापन है। घर में जो थोड़ी-बहुत जगह-जमीन थी, सो कर्ज़ के चलते गिरवी थी। अब भी अगर वसूली का कोई रास्ता न निकाला जा सका तो सब नीलाम पर चढ़ जाएगी। हालत उनकी सचमुच ही खराब है। एक बेसहारा बहन अपने तीन बच्चों के साथ उन्हीं के यहां रह रही है—उसका सारा ही खर्च चलाना पड़ता है। उनके तीन भाई-बहन और भी हैं। बहन तो ब्याह-योग्य हो आई। फीस नहीं जुटने के कारण दोनों भाइयों का स्कूल जाना बंद हो गया है। मां ने लिखा है, इनका स्कूल जाना न होगा तो तमाम दिन मुहल्ले के शरारती लड़कों की सोहबत में ये बिगड़ जाएंगे, इत्यादि।

उन्हें उत्साहित करने की कोशिश करते हुए प्रद्योत ने कहा—फिर भी आपका एक बार वहां जाना ज़रूरी है। वे लोग बेसहारे हैं।

अमल बाबू ने मानो खीझकर कहा—और मेरा ही कौन सहारा है!

—लेकिन एक आप ही तो घर की उम्मीद हैं।

अब की अमल बाबू ने सिर नहीं उठाया। थकी हुई आवाज़ में बोले—जब से पिताजी गुज़रे हैं, तब से आज बारह वर्षों तक यह बात सुनता आ रहा हूं। और इसी बात का यकीन करके मैंने अपने भविष्य को धीरे-धीरे बलिदान किया है। लेकिन अब यह सुहाता नहीं है प्रद्योत बाबू! एक खास हद को पार कर जाने पर आत्मत्याग भी पाप हो उठता है। लगता है, मैंने वही पाप किया है।

प्रद्योत चुप हो रहा। अमल बाबू फिर से बोले—दूसरों की ज़िंदगी के हिसाब की गलती को सुधारने में अपने को कहीं का न रहने देने में कौन-सा महत्त्व है, मैं नहीं जानता। क्या मेरी अपनी ज़िंदगी की कोई कीमत नहीं? आप यह कहना चाहते हैं कि अपने लिए मेरा कोई फर्ज़

नहीं। पिताजी ने बेहिसाब खर्च किया और कर्ज कर गए, उसीके प्रायश्चित-स्वरूप मुझे अपने जीवन की सारी सार्थकता से वंचित रहना पड़ेगा ; एक अब मरा, तब मरा जैसे बूढ़े के हाथों अपनी बेटी को सौंपकर वे जो गलती कर गए, उसीके चलते में मेरी तमाम ज़िंदगी बर्बाद हो, इसके भी कोई मानी हैं ?

प्रद्योत कहना चाह रहा था : लेकिन उपाय क्या है ? उसके मुंह की बात को छीनकर अमल बाबू बोले—उपाय क्या है ही नहीं ! काश, मैं इन सारी बातों को भूलकर रह सकता, अपनी रक्षा के लिए अतीत की बेड़ी को बिल्कुल तोड़ फेंक पाता। अपने जीवन को तबाह करके एक पुराने संसार को सी-सीकर रखने का लाभ क्या है ? आखिर उनकी भी दुर्गत न गई और अपने को भी बर्बाद किया।

प्रद्योत चुप था। अमल बाबू उठ खड़े हुए। सरगर्मी से चहलकदमी करते हुए कहने लगे—दोनों वक्त में चार जगह ट्यूशन करता हूं। पांच भी हो जाए तो उज्र नहीं। दस साल से यही हाल है। मन एकबारगी जड़ हो गया है। आदत के मुताबिक रोज़ ऐसा ही किए जा रहा हूं.... जीने की तरह जी भी रहा हूं या नहीं, यह भी नहीं समझ सकता। इसी जीवन को क्या आदर्श जीवन मानना पड़ेगा ! जिस अतीत ने मेरी सारी ज़िंदगी को बेकार कर दिया, उसीसे जकड़े रहने की क्या जरूरत पड़ी है ? उसे अस्वीकार करने का कोई उपाय नहीं, आखिर क्यों ?

लेकिन अस्वीकार करने का उपाय शायद नहीं है। सो फिर से सामान समेटकर अमल बाबू घर के लिए रवाना हो गए।

प्रद्योत को अमल बाबू का यह मनोभाव न जंचा। उसे इसके अन्दर एक अत्यन्त कमज़ोर स्वार्थपरता का ही आभास मिला। उसके जी में आया, चूंकि प्रतिकूल परिस्थितियों से लोहा लेने की शक्ति अमल बाबू में नहीं है, अपनी अक्षमता की इसीलिए उन्होंने ऐसी कैफियत बना रखी

है। फिर भी अमल बाबू की बात में एक नई दिशा का संकेत उसे मिला। सच ही उसने कभी इस ओर की सोची ही नहीं। उसे यह पता न था कि अतीत की स्मृति एक न ढोया जा सकने वाला बोझ भी हो सकती है। इस ओर से वह बिल्कुल आज़ाद है, परम स्वतंत्र। उसे अब से अपने जीवन को मनमाना गढ़ने का मौका मिला है। किसे पता है, पिछला इतिहास क्या है उसका! हो सकता है, वह अमल बाबू से भी ज़्यादा पेचीदा हो। शायद कि उस पेचीदेपन से छुटकारे की कोशिश करते हुए ही उसकी सारी शक्ति चुक जाती और अपने जीवन को सार्थक करने का अवसर ही न मिलता! लेकिन स्मृति की रेखा को पोंछकर भाग्य-देवता ने उसे सारे बंधनों से मुक्त कर दिया है। लेखा के पन्नों पर उसे पिछली तफसील लाने की ज़रूरत ही नहीं, उसे बिल्कुल नए सफेद सफे पर अपनी जीवन-कहानी लिखने का सौभाग्य मिला है।

बेशक यह सोचने की बात है कि वह कहानी लिखी कैसे जाए। चारों तरफ ज़्यादा से ज़्यादा लोग जैसी ज़िंदगी बिता रहे हैं, उसे सोच-कर हताश ही होना पड़ता है। उनकी सारी शक्ति तो महज़ अस्तित्व के निम्नतम स्तर में अपने को कायम रखने के लिए जूझने में ही खत्म हो जाती है। आखिर उसका भी क्या वही हाल होगा? जड़ के लिए ज़मीन से जकड़े रहकर दूर आसमान में फूल खिलाने का मौका क्या उसे नहीं मिलेगा?

उसे भी इसी बेहया धक्कमधुक्की में लगना पड़ेगा, यह सोचकर उसे बहुत बुरा लगता। मगर जीने के लिए यह किए बिना चारा भी नहीं। वह मन ही मन शपथ लेता कि इस दयनीय स्थिति से ऊपर उठकर ही रहूंगा।

स्मृति की पुरानी बही अगर सचमुच ही सब दिन के लिए बंद हो चुकी हो, सच ही यदि भाग्य ने उसे सब बन्धनों से मुक्त करके इस नई

पृथ्वी पर भेजा हो, तो भाग्य के इस दान को वह सिर-आंखों पर उठाकर उसकी मर्यादा की रक्षा करेगा। शायद यही पहला मौका था, जब आत्मविस्मृति उसे उतनी भयावनी न मालूम हुई। बन्धन न रहने का भी एक संतोष होता है। अमल बाबू की तरह अतीत के खिलाफ खीज जाहिर करना उसे पसंद नहीं, लेकिन जहां भूत का खिंचाव बहुत प्रबल हो, वहां सामने की ओर बढ़ना बड़ा कठिन है, यह भी उसे कबूल करना ही पड़ता है। यह तो मानो दलदल पर घर बनाना है। आधा सामान तो कमज़ोर मिट्टी ही डकार जाती है। जिसकी ज़िन्दगी में पूंजी ही थोड़ी होती है, नई बनावट बनाने के बदले आखिर तक उसे अपनी कब्र ही खोदनी पड़ती है।

प्रद्योत के जी में आता, उसके चारों ओर कितने ही लोग इसी तरह बेकार हो रहे हैं। मनुष्य अभी तक धरती को मुक्ति का क्षेत्र नहीं बना सका है। ज़िन्दगी के नये राही को जितना पाथेय दिया जाता है, उसके कंधे पर अतीत का कर्ज़ उससे कहीं ज़्यादा लाद दिया जाता है। और वह कर्ज़ अदा किए बिना नहीं चलने का।

पिछले जीवन में शायद अमल बाबू की तरह दरिद्रता उसकी राह का रोड़ा न रही थी। लेकिन जीवन-साधना के लिए गरीबी से भी तो बड़ी बाधा है। उहूं, आत्मविस्मृति के लिए अब शोक नहीं करना। शायद उसके लिए यही ठीक है।

उसकी बन्धनहीनता के इस दिलासे पर ओट में शायद भाग्यदेवता हंसते। उन्होंने प्रद्योत के जीवन को कहीं ज़्यादा जटिल बनाकर आंका है।

कई दिन के बाद एक रोज सवेरे दोतल्ले पर किसीका अखबार

लेकर प्रद्योत उलट-पलटकर देख रहा था। कई दिनों से अखबार का विज्ञापन देखना ही उसका काम हो गया है। अब तक तरह-तरह की आवश्यकताओं के विज्ञापन पर उसकी नज़र पड़ चुकी है। कोई भी जगह उसे अपने लायक नहीं जंची, फिर भी वह दरखास्त देने से बाज़ नहीं आया—नतीजा अब तक कुछ नहीं निकला।

बरामदे से होटल के मैनेजर साहब जा रहे थे। प्रद्योत को देखकर बोले—आपका एक खत है। कमरा बंद था, सो किवाड़ के पल्ले की फांक से मैं अन्दर डाल आया।

मैनेजर साहब चले गए। प्रद्योत अवाक् हो गया। अखबार उसने रख दिया। उसे लगा, मैनेजर मज़ाक कर गए। उसका खत ? कौन लिखेगा खत उसको ? इस दुनिया पर महज सात दिन की जिसकी उम्र है, उसे चिट्ठी कौन लिख सकता है ! कौतूहल से प्रद्योत ऊपर गया।

कमरा खोलकर देखा, सच ही उसके नाम खत आया है। अमल बाबू ने लिखा है। लिखा है कि दो दिन की छुट्टी में घर आया है और बीमार पड़ गया। बुखार बड़ा वैसा है। लौटने में शायद देर हो। इस अर्से के लिए आप अगर मेरे छात्रों को पढ़ाने का काम सम्हाल दें तो बड़ी कृपा हो। अपने बदले किसीको ज़िम्मा दिए बिना इतने दिन गैर-हाज़िर रहने से काम छूट सकता है। जितने दिनों तक आप पढ़ाएं उतने दिनों की तनखा लेने में किसी तरह का संकोच न करें। चिट्ठी में उन्होंने छात्रों का नाम-पता भी लिख दिया था।

यों अमल बाबू की बीमारी का उसे दुःख तो हुआ पर अपनी डांवा-डोल हालत में इस थोड़ी-सी सहूलियत के लिए खुश हुए बिना भी न रह सका ! उसने दिलासा देते हुए अमल बाबू को पत्र लिख दिया और उसी रोज़ छात्रों के घर की तलाशी में निकल पड़ा।

अमल बाबू की तबीयत ज़्यादा खराब थी, फिर भी उन्हें एक हफ्ते से ज़्यादा देर होगी, प्रद्योत यह नहीं सोच सका था। एक के बजाय दो हफ्ते गुज़र गए, वे न लौटे। अमल बाबू से महज़ कुछ ही दिनों का परिचय था, तो भी उनके लिए प्रद्योत का मन चंचल हो उठा। उन्हें चिट्ठी लिखे या नहीं, वह इसी उधेड़बुन में था कि वहां से जो खबर आई, प्रद्योत उससे अवाक् रह गया।

कच्चे हाथ की लिखी, टेढ़े-मेढ़े हरूफों की चिट्ठी। चिट्ठी लिखी थी अमल बाबू के भाई ने। लिखा था, भैया की बीमारी सख्त है। दो जगह उनकी पिछली तनखा बाकी पड़ी है। यदि वे रुपये वसूल करके भेज सकें तो बड़ा काम हो। पैसे की कमी से भैया का इलाज नहीं हो पा रहा है।

प्रद्योत परेशान हो उठा। गहराई से अब तक उसका परिचय उसी एक आदमी से हो सका है। जीवन के इस पहले आत्मीय से अजाने ही उसे कितना अनुराग हो गया है, इसे वह घटना से समझ गया।

बकाया वसूल करके भेजने में उसने देर नहीं की। लेकिन रुपये भेज चुकने के बाद उसके जी में आया, रुपये लेकर वह खुद भी जा सकता था। उनके घर की जैसी हालत उसने सुन रखी है, लगता है, रुपये भी हों तो देखभाल करने वाला मिलना कठिन है। उनका घर भी कुछ ज़्यादा दूर नहीं। खुद ही जाकर एक बार देख आता, तो क्या हर्ज था।

उसने अमल बाबू की हालत जल्दी से जल्दी लिख भेजने के लिए उनके भाई को चिट्ठी लिखी थी। तीन दिनों तक जब कोई उत्तर नहीं आया, तो एक दिन वह वहां के लिए चल ही पड़ा। महज़ कुछ दिनों के एक परिचित के लिए उसको ऐसी परेशानी ज़रा अचरज की लग सकती

है। लेकिन सोच देखिए तो प्रद्योत की नई ज़िंदगी के लिए इस मामूली परिचय की कीमत थोड़ी नहीं। फिर इतने लोगों के होते अमल बाबू ने अपना काम देकर उसका जो तात्कालिक उपकार किया है, उसकी किसी हद तक कृतज्ञता भी थी।

४

अमल बाबू के घर का स्टेशन रेल से लगभग दो घंटे का रास्ता था। लेकिन गांव के लिए कोई तीन मील पैदल चलना पड़ता। प्रद्योत निकला तो बहुत ही सवेरे, फिर भी रास्ता पूछता-पाछता जब वह उनके गांव में पहुंचा तो बारह बज चुके थे।

अमल बाबू के लिए उसे फिक्र थी, तो भी गांव की राह उसे बड़ी भली लगी। ठीक-ठीक समझ तो नहीं सका वह, लेकिन लगा, ऐसे ही किसी गांव की स्मृति उसके मन में मानो कहीं है। सच पूछा जाए तो दक्खिणी बंगाल के इस गांव की शोभा खास कुछ है नहीं। शासन की कमी के कारण प्रकृति ढीठ होकर मानो वहां के हीनवीर्य लोगों की निशानी तक को मिटा डालने को तुल गई है। उसकी इस ढिठाई के बावजूद जंगल में भयानकता की महिमा नहीं है, है एक बेतरतीब भरमार। जहां की माटी गरीब होती है, वहां उसकी कंजूसी ही कुदरत को शासित करके उसे एक सलोना रूप देती है। यहां की सरस माटी में स्नेह की जैसी अधिकता है, वैसी ही कमी है मनुष्य के शासन की। चारों ओर की बेतरतीब बिखरी झाड़ियों में यहां की आबादी दब गई है। दिन के वक्त भी यहां की संकरी सड़कें अंधेरी लगती हैं। सारा गांव मानो उदास-सा हांफ रहा है। फिर भी वह नहीं समझ पाता कि यह गांव उसके मन में कहां पर एक पुकार जगाता है।

दोपहर को गांव की गैल सूनी पड़ी थी। ऐसे किसी भी आदमी पर नज़र ही नहीं पड़ रही थी, जो उसे बता सके कि अमल बाबू का घर

कौन-सा है। सेंवार भरा एक पोखरा था, जिसके दो ओर से संकरे रास्ते गए थे। प्रद्योत आगा-पीछा कर रहा था कि किधर को जाए। इतने में पानी के अंदर से एक माथा बाहर निकला। दस-बारह साल का एक लड़का। कौन जाने, पानी में बुड़की लगाकर वह अंदर क्या कर रहा था। तैरकर वह जब किनारे आया, तो उसके हाथ में बांस की एक नली थी। नंग-धड़ंग। देह पर कपड़े से कोई वास्ता नहीं। इतने बड़े लड़के को नंगा देखकर प्रद्योत खुद अप्रतिभ हो गया। मगर उस लड़के को कोई परवा नहीं। बेखटके वह पानी में से बाहर निकला। बांस की नली के एक मुंह को उसने मिट्टी से बंद किया फिर बांध पर जो कपड़ा पड़ा था, उसे लेकर पहनने लगा।

मौका देखकर प्रद्योत ने पूछा—अमल बाबू का घर कहां पर है, बता सकते हो मुन्ने?

लापरवाह की नाईं उसकी तरफ देखे बिना ही उस लड़के ने कहा—मैं नहीं जानता!

प्रद्योत ज़रा अचम्भे में पड़ गया। ज़रा देर पहले रास्ते में एक किसान ने जैसा बताया, उस हिसाब से गांव की पहचान में तो भूल नहीं होनी चाहिए। ज़रूर ही अमल बाबू इस गांव में रहते हैं। मगर गांव के ही एक लड़के को इसका पता न हो, ऐसा भी हो सकता है? फिर भी संदेह से उसने पूछा—अच्छा, यह गांव दरवाक ही तो है?

लड़का फिर बांस की नली से उलझ पड़ा था। उसने प्रद्योत की तरफ बिना ताके ही कहा—हां जी।

आसपास कोई भी न था। उस लड़के की वैसी लापरवाही के बावजूद प्रद्योत ने फिर पूछा—अमल बाबू इस गांव में नहीं रहते हैं?

बांस की नली लेकर चलने की तैयारी में खीजकर वह बोला—कह

तो दिया कि नहीं, मैं नहीं जानता !

इतने पर भी उसका पिंड छोड़ देने से प्रद्योत का काम नहीं चल सकता। किसीकी मदद न मिले तो अमल बाबू का घर ढूंढ़ निकालना मुश्किल है। अमल बाबू अक्सर कलकत्ते रहते हैं। हो सकता है इस वजह से यह लड़का उनका नाम न जानता हो। प्रद्योत ने इस बार दूसरी तरकीब लगाई। अमल बाबू के भाई ने उसे जो पत्र दिया था, उसमें उसका नाम लिखा था, विमल।

हमउम्र का नाम इसे मालूम हो शायद, इसलिए प्रद्योत ने पूछा—अच्छा, इस गांव में विमल नाम का एक लड़का है, पहचानते हो उसे ? उसके भैया की तबियत बहुत खराब है।

लहजे में जैसे छूमंतर हो गया। उस लड़के का चेहरा खुशी से खिल उठा। उत्साह से वह बोला—विमल तो मेरा ही नाम है।

हंसी रोककर प्रद्योत ने कहा—गज़ब है ! अच्छा, तुम्हारे भैया का नाम अमल बाबू नहीं ?

—ओ, तो आप नींबू भैया को ढूंढ़ रहे हैं ! वही कहा होता।

नाम की गलती का कसूर कबूल करके प्रद्योत ने कहा—तुम्हारे भैया अब कैसे हैं ?

विमल ने कहा—अच्छे हैं।

और फिर भैया की बीमारी जैसी मामूली बात पर मगज़पच्ची न करके पूछा—आपने मेरा नाम कैसे जाना ?

प्रद्योत ने भरसक इस टेढ़े सवाल का जवाब देने की कोशिश की—भूल गए, तुमने चिट्ठी में नाम लिखा था ?

विमल जैसे आसमान पर से गिर पड़ा। बोला—क्या खूब ! मैंने भला चिट्ठी कब लिखी ?—फिर बेखटके प्रद्योत की पीठ पर एक मुक्का मारकर कहा—मुझसे मज़ाक किया जा रहा है, क्यों ?

लाचार प्रद्योत को अपनी जेब से वह चिट्ठी निकालनी पड़ी। गनीमत कि चिट्ठी जेब में पड़ी थी। वरना सबूत की कमी से जाने विमल के हाथों उसकी क्या दुर्गत होती।

विमल ने खत को ज़रा उलट-पलटकर देखा और कहा—धत्तेरे की, यह तो छोटी जीजी का लिखा है। मैं इससे कहीं अच्छा लिख सकता हूं। बड़ी पाजी है तो जीजी, मेरा नाम लिख मारा है।

सचमुच ही विमल पर बड़ा जुल्म ढाया गया है, इसे जानते हुए प्रद्योत ने पूछा—तुम्हारे भैया अब भले-चंगे हो चुके तो ?

—हां आज सवेरे मेरा कान मल दिया है !—उनके स्वस्थ होने का ज़बरदस्त सबूत देते हुए विमल ने पूछा—आप उन्हें देखने आए हैं ? दोस्त हैं उनके, क्यों ?

जो भैया कान ऐंठ देते हैं, उनके दोस्त के रूप में अपना परिचय देना गौरव की बात है या नहीं, यह ठीक-ठीक न समझ सकने के बावजूद प्रद्योत को कबूल करना पड़ा।

बातें करते हुए दोनों संकरे रास्ते से एक तरफ को बढ़ते जा रहे थे। सामने सुपारी के पेड़ों की ओट से मिट्टी का एक घर दिखाई पड़ा।

उमंग से विमल ने कहा—वह रहा हमारा घर !

और अचानक उसे रोककर मानो कोई गुपचुप बात पूछनी हो, कानों में कहा—अच्छा, आपका नाम ?

नाम को विमल ने दो बार दुहराया। लगा, उसे वैसी खुशी नहीं हुई। बोला—आपका दूसरा कोई अच्छा नाम नहीं, सीधा सहज-सा !

इतने दिनों के बाद आज बिना सोचे-समझे अपना नाम रखने का प्रद्योत को अफसोस हुआ। क्या पता था कि कभी विमल को उसका नाम उच्चारण करने में तकलीफ होगी—जानता होता तो कोई सहज नाम ही रखता।

उसने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें कैसा नाम पसंद है ?

—खूब सहज नाम। जैसे मेरे नींबू भैया, मेरे पड़ोस के लाल भैया।

प्रद्योत बोला—तुम्हें जो पसंद हो, उसी नाम से मुझे पुकारो! विमल ज़रा अचम्भे में पड़ा—वाह, ऐसा भी होता है ? मैं नाम रक्खूंगा तो आप उसे मानने क्यों लगे !

प्रद्योत ने कहा—मैं मान लूं तो क्या गड़बड़ी है !

—तो मैं आपको लाल भैया कहूंगा।

—वही सही !

विमल ने नाम जानने की उत्सुकता क्यों दिखाई, इसका रहस्य घर के पास पहुंचकर खुला। दरवाज़े के पास सड़क पर पांच-छह की उम्र की तीन-चार बच्चे-बच्चियां खेल रहे थे। शायद अमल बाबू की विधवा बहन की संतानें हों। विमल के साथ एक अजनबी को देख कौतूहल से सब उसकी तरफ ताकने लगे। पता चला, विमल के इस नये आविष्कार की तरफ ताकने का भी उन्हें अधिकार नहीं। एक के सिर पर चपत लगाकर उसने कहा—ऐसे ताक क्या रहा है ? मार जो पड़ी, सो बच्चे खिसक पड़े। विमल प्रद्योत के कुरते का आस्तीन पकड़कर विजयी वीर की तरह आगे बढ़ चला और चीखकर दरवाज़े पर खड़ी चौदह-पंद्रह साल की एक लड़की को चौंकाते हुए बोल उठा—बता तो कौन हैं, जीजी ?

लेकिन विमल की लड़खड़ाती जीभ से नाम निकलने के पहले ही जीजी वहां से गायब हो चुकी थी।

प्रद्योत दरवाज़े पर रुक गया। बोला—जाओ, अपने भैया को मेरी खबर कर दो।

प्रद्योत का हाथ खींचते हुए विमल ने कहा—आप चलिए भी। भैया उस तरफ के कमरे में लेटे हैं।

प्रद्योत को लगा, खबर करने की ज़रूरत वह नहीं समझता।

उसने हंसकर कहा—खबर दिए बिना भी क्या जाना चाहिए। जाओ, तुम कह आओ।

सो न चाहते हुए भी विमल को लाचार जाना पड़ा। अपने नये मित्र को लोगों के सामने एक-ब-एक हाज़िर करने का सुयोग न मिलने से वह सुखी न हुआ। वह कुछ खिन्न-सा अन्दर गया।

बाहर खड़ा प्रद्योत उनके घर पर गौर कर रहा था। मिट्टी का घर। फूस की छौनी। वह भी गई-बीती हालत में। पहले बाहर एक बैठक-सी थी शायद, लेकिन अब वह बरामदा दीमक खाए हुए दो-एक खंभों के सहारे मिट्टी का एक टीला-सा बना खड़ा रह गया है।

अहाता ईंट की दीवार से घिरा था। दीवार अब बहुत जगह टूट चुकी थी। तमाम काई की परत पड़ी। जगह-जगह पौधे उग आए थे। सब मिलाकर उसकी शकल ऐसी बन गई थी कि उसका पुराना परिचय पाना मुश्किल था।

ज़रा ही देर बाद विमल लौट आया और कुछ खीझा हुआ सा बोला—मैंने कहा था कि इजाज़त की ज़रूरत नहीं! उन्होंने मने थोड़े किया?

विमल को इस बात में शुबहा न था कि प्रद्योत इजाजत के लिए ही अंदर न जा रहा था।

प्रद्योत ने हंसकर कहा—और कहीं करते मना?

—ऐसा भी होता है! आप तो उनके दोस्त हैं।

उसकी इस दलील को न मानने की गुंजाइश न देखकर ही शायद विमल का उसने अनुसरण किया।

बाहर से देखकर घर के बारे में जो धारणा बनी थी, अन्दर जाने पर भी उसमें परिवर्तन की गुंजाइश न हुई। एक कच्चे आंगन के दोनों

तरफ छौनी। एक तरफ तीन और दूसरी तरफ दो कमरे। लेकिन चूंकि मरम्मत नहीं की जा सकी इसलिए एक तरफ के कमरे काम लायक नहीं रह गए थे। दूसरी तरफ के तीनों कमरों की भी हालत अच्छी न थी, पर उनमें किसी तरह से सिर बचाया जा सकता था। टूटा-फूटा हो चाहे, पर घर साफ-सुथरा था। कच्चा आंगन जगमग कर रहा था। कहीं घास-वास नहीं। दोनों तरफ कुछ पपीते के पेड़। टूटे कमरों से होकर फैल गई थीं कोंहड़े की घनी लताएं। उनके नीचे तक की ज़मीन साफ-सुथरी।

बिमल के पीछे-पीछे ऊंचे बरामदे से अमल के कमरे की तरफ जाते हुए प्रद्योत ने गौर किया कि बरामदा, आंगन और सभी चीज़ों में एक कुशल हाथ की छाप है। इनकी गरीबी में तो कोई शुबहा ही नहीं, लेकिन उसको इन्होंने अपनी ढिलाई से घिनौनी नहीं होने दिया है।

एक तरफ को अमल बाबू का छोटा-सा कमरा। दाहिनी ओर को मुड़कर बरामदा कुछ खुला-सा। उसी बरामदे पर एक चटाई डालकर कंबल लपेटे अमल बाबू पड़े थे। प्रद्योत पर नज़र पड़ते ही हंसकर अगवानी की—आइए।

प्रद्योत चटाई के एक ओर बैठ गया। अमल बाबू बोले—मैंने यह नहीं सोचा था कि आप तकलीफ उठाकर इतनी दूर आएंगे। आपके भेजे रुपये तो मुझे मिल गए हैं।

संकोच से हंसकर प्रद्योत ने कहा—रुपये भेजने के बाद जब आपकी कोई खबर नहीं मिली तो मुझे फिक्र हो गई। चिट्ठी में आपकी बीमारी के बढ़ने की खबर मिली थी।

अमल बाबू ने और कुछ नहीं कहा। एहसानमंद होकर चुपचाप उसकी तरफ ताकते रहे।

अमल बाबू पहले से शायद कुछ अच्छे हैं, पर शकल देखकर वैसा नहीं मालूम होता। ठिगने कद के आदमी। इन कुछ रोजों की बीमारी से

दुबले होकर मानो और छोटे हो गए हैं। लहू की कमी से सारे चेहरे पर पीलापन, आंखों के किनारे स्याही-सी। जिस ढंग से बैठे थे, उसमें भी गहरी दुर्बलता झलक रही थी!

प्रद्योत ने दुविधा से पूछा—अब कुछ ठीक समझ रहे हैं अपने को आप?

—ठीक!—अमल बाबू ज़रा हंसे—हां, कुछ ठीक तो ज़रूर हूं! लेकिन चलने-फिरने लायक होने में काफी दिन लग जाएंगे। आप भी संकट में पड़े हैं। अगर तकलीफ होती हो तो उन ट्यूशनों को छोड़ दें। जो होना होगा, होगा।

—नहीं नहीं, मेरा यह मतलब नहीं। बात यों है कि अभी ये ट्यूशनें मुझे नहीं मिल गई होतीं तो बड़ी आफत आती।

बात का मोड़ दूसरी ओर घुमाते हुए प्रद्योत ने पूछा—लगता है, यहां इलाज में कठिनाई पड़ रही है।

अमल बाबू फीका हंसकर बोले—नहीं नहीं, कठिनाई कैसी? अभाव वही महसूस करते हैं जिन्हें उपाय होता है। यहां अच्छे इलाज का उपाय ही नहीं है तो कठिनाई क्या?

इसपर और कहा क्या जा सकता था! प्रद्योत चुप रह गया। एकाएक वहां की नीरवता पर चोट करते हुए दरवाज़े के पास एक चीख उठी। प्रद्योत चौंक-सा उठा। थकी निगाहों से ताककर अमल बाबू ने कहा—कठिनाई सिर्फ यही है!

प्रद्योत को समझते अब देर न लगी। वह हंस उठा। अमल बाबू के छोटे भाई ने अभी तक अपनी शकल नहीं दिखाई थी। अब उस देरी का सूद भी अदा करते हुए सिर पर आसमान उठाते हुए वह आंगन में दिखाई पड़ा—विमल उसे खदेड़ता आ रहा था। उसके विरोध और रोक की परवा किए बिना विमल उसके हाथ से कुछ छीन लेने की कोशिश

कर रहा था। अमल बाबू ने आवाज़ दी—बम्मी!—देखते ही देखते विमल बिल्कुल बदल गया, बोलती बंद, देह अचल।

—इधर सुनो।

अमल बाबू की आवाज़ तो बड़ी क्षीण थी, पर देखा गया, उसका प्रभाव गज़ब का था। विमल ने मुंह लटकाए धीमे से कहा—उसने मेरा लट्टू क्यों चुराया। मैंने छिपाकर रखा था।

—इधर सुन जाओ!

कहना-सुनना बेकार है, शायद यही समझकर विमल एक ही छलांग में बरामदे पर पहुंच गया।

प्रद्योत मुश्किल से अपनी हंसी ज़ब्त किए कुछ कहने जा रहा था कि तब तक अमल बाबू बोले—कान पकड़कर उस खूंटी के सामने खड़े रहो, चुपचाप।

विमल ने हुक्म बजाने में ज़रा भी देर न की, लेकिन संसार में न्याय-अन्याय का विचार नहीं है, यह सोचकर उसका चेहरा अंधकारमय हो उठा। उसपर भैया की फटकार पड़ते देख खुश होकर छोटा भाई वहां से खिसक रहा था। अमल बाबू ने उसे पुकारा—कमल, तुम भी कान पकड़कर खड़े हो जाओ।

लगा, कमल को संसार के घने अंधेरे में प्रकाश की एक किरण दिखाई पड़ी। दोनों भाई कान थामे खंभे से सटकर खड़े हो गए। अमल बाबू ने थके और दुखे स्वर में प्रद्योत से कहा—घर का सुख यही है!

प्रद्योत को सचमुच ही इस बात पर अचरज हुआ। भला इन उभरते हुए उमंगों वाले सदाप्रसन्न बच्चों की स्वाभाविक जीवनाभिव्यक्ति से भी कोई नाखुश हो सकता है! यह तो अमल बाबू की रोगजनित दुर्बलता की खीझ नहीं है, इसकी बुनियाद उनके हृदय की गहराई में है; दरअसल उनकी निगाह ही बिगड़ गई है।

कान पकड़े हुए खड़े-खड़े ही एकाएक कोई बहुत जरूरी बात याद आ गई, इसीलिए तेज़ी से विमल ने कहा—नींबू भैया, आज बड़े घर वाले पोखरे में उन लोगों ने एक ऊदबिलाव पकड़ा है।

दोनों आंखें आवेग से फाड़कर सिर हिलाते हुए कमल ने कहा—हां, मैंने भी देखा है!—उसके बाद कान से हाथ हटाकर उसने जहां तक बन सका, दोनों हाथ फैलाकर उसका आकार भी बताया—यह, इतना बड़ा!—विमल का नाज़ जैसे छिना जा रहा हो, वह बिगड़कर बोला—खाक देखा है तू ने! अच्छा बता तो भला, उसकी आवाज़ कैसी होती है?

कमल कब हार मानने वाला था। अपनी आवाज पतली करके उसने नकल की—मिऊं!—हूबहू बिल्ली जैसी।

छोटे भाई को जीभ दिखाकर विमल उसकी बात को झूठ साबित करना चाह रहा था कि अचानक भैया की नजर से नजर मिलाते ही दोनों के हाथ जल्दी से कान पर जा रहे और चेहरा अजीब ढंग से गंभीर हो उठा।

५

अमल बाबू कुछ अच्छे हैं। उनकी मदद की वैसी कोई ज़रूरत नहीं। फिर भी किसी गृहस्थ के घर दुपहर में आकर बिना खाए-पिए जाया नहीं जा सकता। प्रद्योत अमल बाबू के आग्रह को टाल नहीं सका। उसे रुक ही जाना पड़ा।

उसे रोकने की ज़्यादा गरज कमल-बिमल को ही पड़ी थी। ज़रा देर बाद प्रद्योत के खान-पान के बंदोबस्त के लिए भैया उठकर चले गए। उन दोनों को सज़ा भी पूरी हो गई। सो उन दोनों ने प्रद्योत को घेरा। कमल से प्रद्योत का अभी बदस्तूर परिचय नहीं हो पाया था। मगर उससे क्या! वह प्रद्योत के समीप गया और मज़े में उसकी जेब में हाथ डालते हुए पूछा—देखूं तो क्या है, तुम्हारी जेब में?

विमल घुटने गाड़कर पास ही बैठा था। उसने कमल के हाथ को झटके से हटा दिया और बुज़ुर्ग की नाईं बोला—हट, ऐसे भी कोई तंग करता है!—और, तुरंत ही किसीको तंग कैसे किया जाता है, शायद यह दिखाने के लिए उसके ऊपर की जेब से मनीबैग निकालकर कहा—इसमें बहुत पैसे हैं शायद?

प्रद्योत ने हंसकर कहा—हां।

बैग के बारे में विमल और भी पूछताछ करता शायद, पर बाधा देते हुए कमल ने कहा—और तुमने जो बैग लिया!

अपनी ज़्यादा उम्र के लिहाज़ से कमल की बात को कुछ न लगाते हुए विमल ने कहा—लिया तो अच्छा किया। लाल भैया को आखिर

यहां ले कौन आया है ?

कमल के पास इसका कोई जवाब न था। सो उसने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया—मैं भैया से कह दूंगा।

लहमे में जादू-सा हो गया। बैग प्रद्योत की जेब में जा रहा और विमल ने कहा—मैंने लिया थोड़े है ?

नहाने के लिए चलने लगे तो दोनों भाइयों के उत्साह की सीमा न रही। इस बीच कानोंकान अनेक उपदेश और आश्वासन देकर विमल ने प्रद्योत को मोह लिया था। और उन सारे उपदेशों का सार यही था कि कमल को साथ ले चलना बिल्कुल वाजिब नहीं है। एक तो वह बच्चा है, फिर तैरना नहीं जानता। उसीकी संभाल में सारा मज़ा किरकिरा हो जाएगा। अगर वह साथ न हो तो दोनों और दूर किसी अच्छे तालाब में जा सकते हैं। वहां तैरने की ज़्यादा सहूलियत होगी। और वहां जैसे खिले हैं कुमुद के फूल कि आप देखकर दंग रह जाएंगे। कुछ तोड़कर ही ले आएं तो क्या है! भूनकर उसके दाने खाए जाएं तो स्वाद भूलना कठिन है। आज भेंट का लाबा वह लाल भैया को खिलाकर ही रहेगा। लेकिन कहीं कमल साथ रहा, तो यह सब कुछ होने से रहा। किसी तरह उसे उतनी दूर ले भी जाया जाए तो उसकी आदत बड़ी बुरी है। हमने फूल तोड़े नहीं कि वह भैया से कह देगा। प्रद्योत ने एक बार शायद कहा भी—तुम फिर से नहाओगे ? अभी-अभी तो तुम पोखरे से नहा आए।

ऐसा कहने पर विमल का कुछ ऐसा भाव हुआ, मानो नहाने का इतना संकीर्ण अर्थ लगाकर प्रद्योत ने बड़ी भारी भूल की है। पानी में डुबकी तो अनेक कारणों से लगाई जा सकती है, पर सब क्या नहाना होता है ? फिर उसने तो महज़ बदन भिगोया है, कपड़े तो सूखे ही थे। विमल ने लाख चाहा, पर कमल को अंगूठा दिखाना मुमकिन न हुआ। उसने चुल्लू भर तेल सिर में डाला और जाने कहां से एक अंगोछा

लाकर नाछोड़बंदा की तरह लाल भैया का पीछा पकड़ा।

ज़रा ही देर बाद इस बात के सबूत मिले कि अपनी सारी तरकीब बेकार हो जाने से विमल उससे नाराज़ हो गया है। आधी राह तो वह छोटे भाई की लानत-मलामत करता गया—आखिर तू जा क्यों रहा है? तैरना जानता है?

ज़्यादा बोलकर अपना ज़ोर घटाना कमल को पसंद नहीं। लाल भैया का एक हाथ जोर से पकड़कर वह चुपचाप चला जा रहा था।

विमल ने दूसरी युक्ति लगाई—अच्छा, चल भी तू, आज पानी में एक मगर आया है।

अब की कमल की ज़बान खुली—इस्, मगर आया है। आया है तो तुम्हें भी पकड़ेगा।

—बड़ों को नहीं पकड़ता—विमल ने यह कहकर कमल को चुप करने की नाहक कोशिश की। उसके बड़प्पन पर अपमानजनक संदेह दिखाते हुए कमल ने कहा—तुम कब के बड़े हुए। तुम क्या नींबू भैया, लाल भैया की तरह बड़े हो?

इस संदेह का निराकरण तो एक थप्पड़ लगाकर ही करना उचित होता, पर कमल जिस तरह से लाल भैया का हाथ पकड़े था, ऐसे में बहर-हाल तो यह साधु इच्छा पूरी नहीं होने की, यह सोचकर विमल ने कहा—आज तुझे मछली नहीं मिलेगी। मछली का शिकार मैंने किया है।

—मैं खाता भी नहीं। वैसी मछली भी कोई खाता है?

अब विमल की बांस की नली का राज़ खुला। उस समय उसने पोखरे में उस नली से मछली पकड़ी थी। एक दिन पहले ही वह उस नली को पोखरे के अन्दर रख आया था।

कमल को कायदे में लाने के लिए हो सकता है विमल और कोई

रास्ता अख्तियार करता, लेकिन इतने में यह सोचकर कि दोनों भाइयों की यह ज़बानी लड़ाई और कुछ में न बदल जाए, प्रद्योत ने अचानक सवाल किया—विमल, तुम स्कूल नहीं जाते ?

विमल ने गंभीर होकर कहा—स्कूल जाऊं कैसे ? मेरा तो नाम ही काट दिया है।

—पढ़ने की इच्छा नहीं होती तुम्हें ?

—खूब होती है !—और तुरंत ही हंसकर बोल उठा—धत्, पढ़ने में मेरा जी नहीं लगता।

उसके बाद फिर दार्शनिक की नाईं कहा—क्या होगा पढ़कर ?

लौटते वक्त दोनों भाइयों में बड़ा मेल हो गया। नहाते-नहाते अंगोछे से उन दोनों ने नन्ही-नन्ही कुछ मछलियां छानीं। ये मछलियां बड़ी महंगी हैं और इस वक्त खाने के काम में नहीं लाई जा सकतीं, इस बात पर दोनों में कोई मतभेद नहीं था, मेल इसीपर हुआ। पता चला, इन मछलियों को सब की निगाह बचाकर वे कहीं बढ़ने को छोड़ देंगे। उनके सेवा-जतन से यही नन्ही मछलियां कभी बहुत बड़ी हो जाएंगी, इसपर उन्हें कोई शुबहा ही न था। और जब वैसा होगा तो भैया वगैरह हैरत में आ जाएंगे। सो इसी भरोसे उन्होंने लाल भैया को कसम दिलाई कि जब तक आसमान पर चांद-सूरज हैं, तब तक वे इस बात को किसीसे न कहें। कहीं किया ज़ाहिर····

अपनी दोनों आंखों को तरेरकर कमल ने कहा—न माने फिर क्या होगा, पता है लाल भैया !

लाल भैया ने आखिर बिना जाने-बूझे ही शपथ ली।

बहुत-बहुत कहने के बाद प्रद्योत अमल बाबू को विश्राम के लिए

राज़ी कर सका। छोटे दोनों भाई तो हैं ही, मेरे खान-पान के लिए स्वयं परेशान होने की क्या पड़ी है ?

अमल बाबू ने दुःखी होकर कहा—इन दोनों ने तो आपकी नाक में दम कर रखा है। क्या किया जाए, बड़े शोहदे हैं ये।

प्रद्योत ने तुरंत बात काटकर कहा—नहीं, नहीं, नाक में दम क्यों करेंगे ! आप यकीन मानें, मुझे बड़ा भला लगा।

—रोज़ ही यह नौबत आती है तो भला नहीं लगता।—यह कहकर अमल बाबू कमरे में चले गए।

इस बीच अमल बाबू की मां से प्रद्योत का परिचय हो चुका था। उसके खाने के सयय वही सामने आकर बैठीं। उम्र बेशक उनकी कम नहीं है, लेकिन, दुःख, शोक और गरीबी से लड़ते-लड़ते अपनी उम्र से मानो कुछ ज़्यादा की ही लग रही थीं। उन्हें देखकर श्रद्धा से ज़्यादा दुःख ही होता। बुढ़ापे की बेबस विफलता गरीबी के पट पर बड़ी दर्दनाक होकर खिंच आई थी।

पास-पास तीन आसन लगे थे। मछली वाली साज़िश के बावजूद इस बात को लेकर शुरू में दोनों में शायद फूट पड़ी थी कि लाल भैया के किस ओर को कौन बैठे। लेकिन अन्त तक तय पा गया। विमल दायें बाज़ू बैठा और कमल बायें।

अन्दर से अमल बाबू की जीजी सारा निर्देश दे रही थीं और परोस रही थीं उनकी छोटी बहन।

मां ने कहा—कुछ नहीं बना। खाने की तकलीफ हो गई तुम्हें।

बात सच ही सिर्फ शिष्टाचार की न थी। विमल ने उस दर्द को समझा और जल्दी से कहा—जी नहीं, तकलीफ किस बात की। इससे ज्यादा आखिर हम खाते भी क्या हैं ?

अपनी बात का छोर पकड़कर अमल बाबू की मां ने कहा—शरम

भी आती है बेटे ! आए-गए के पत्तल पर एक के सिवाय दूसरी सब्जी नहीं दे पाती, इसकी बड़ी शरम लगती है। यों गरीब तो हम शुरू से हैं पर ऐसी लाचारी कभी नहीं आई।

प्रद्योत को बड़ी कुंठा हो रही थी। ये बातें कहने में भी शर्मिन्दगी है।

बगल से अचानक कमल बोल उठा—एक दिन अपने यहां पूरियां बनेंगी लाल भैया—असली पूरियां, जैसी दावत में बनती हैं।

विमल ने उसे डांट बताई—रहने भी दे ! बेवकूफ कहीं का ! पूरियां बनती हैं ! साल भर से बन रही हैं पूरियां और तू खा रहा है !

बच्चों की बात पर तो हंसना ही चाहिए, मगर हंसने के बजाय प्रद्योत का चेहरा और गंभीर हो उठा। थाली की तरफ सिर झुकाए वह कुछ बीनने का बहाना किए रहा।

अमल बाबू की मां ने दूसरी बात छेड़ दी—तुम्हारा घर कहां है बेटा ?

प्रद्योत बड़ी मुसीबत में पड़ा। उसके मन में इस दिक्कत की बात पहले नहीं आई थी। झूठ कहने की इच्छा नहीं थी, मगर बनाकर कुछ कहे बिना भी उपाय न था। सच्ची बात वह कहे भी तो कैसे ? और कहे भी तो यकीन कौन करेगा ?

प्रद्योत ने मनगढ़न्त कुछ कह दिया। लेकिन बुढ़िया को उससे तसल्ली न हुई। उसके जीवन की बहुत-बहुत बातें वह खोद-खोदकर पूछने लगी। अन्दर से परेशान होकर प्रद्योत उसके प्रश्नों का जवाब देता गया। कुल मिलाकर उसने अपना जो परिचय दिया, भूल-चूक को छोड़कर वह यों है। बचपन में ही उसके माता-पिता चल बसे। दूर के रिश्ते के अपने एक मामा के यहां वह पला। बड़े हो जाने पर उन्होंने भी उसे अलग कर दिया। बहरहाल वह डांवाडोल-सा है। किसी कदर अपने पैरों पर

खड़े होने की कोशिश कर रहा है।

बूढ़ी शायद कुछ और भी पूछती, लेकिन इस मुसीबत से विमल ने उसे बचा लिया। अमल बाबू की छोटी बहन खटाई परोसने आई। भर-मुंह भात लिए अचानक विमल बोल उठा—जानते हो लाल भैया, जीजी क्या कह रही थी ? कह दूं जीजी ? और छोटी जीजी की फटकार भरी निगाहों की तनिक भी परवाह न करके वह आंधी की तरह बोलता गया—मैं तुम्हें लाल भैया कहता हूं न, जीजी इसकी खिल्ली उड़ा रही थी। कह रही थी—लाल भैया भी काले होते हैं ?

उसकी बात खत्म हो, इसके पहले ही भात भरे गाल पर पड़ी चपत। मां प्रद्योत के साथ हंसने लगी।

और अब जो छोटी जीजी कमरे में गई, फिर न निकली। बड़ी देर बाद जब लाख किए भी उसको मनाया न जा सका, तो घूंघट काढ़कर अमल बाबू की दीदी ही परोसने आई।

तीसरे पहर रुखसत होना पड़ा। साथ में कुछ रुपये ले गया था प्रद्योत। बड़ी मुश्किल से वह अमल बाबू को रुपया लेने के लिए राज़ी कर सका। बहुत ही कुंठित होकर अमल बाबू ने कहा—शायद मैं चुका भी न पाऊं ये रुपये।

प्रद्योत ने दूसरी बात छेड़कर इस प्रसंग को दबा दिया। पूछा—आप कब तक कलकत्ते जा सकेंगे ?

—जैसी कमज़ोरी है, लगता है, दो हफ्ते से पहले काम करने की स्थिति में न आ सकूंगा; मगर अपने लोगों का यह मिज़ाज भी तो नहीं चल सकता कि तंदरुस्त हुए बिना काम ही न करूंगा। दसेक दिन में जाऊंगा। तब तक आप काम चला दें।

यही दिलासा देकर प्रद्योत निकल पड़ा। लेकिन कमल-विमल ने उसका पीछा न छोड़ा। उसे जाने देने की नीयत न थी उनकी। जब

आरजू-मिन्नत का कोई नतीजा न निकला, तो उसने लाल भैया को एक बड़ा-सा प्रलोभन दिया कि आज रात भर रुक जाएं तो सुबह एक अनोखी जगह मछली के शिकार के लिए ले चलेंगे। यह जगह उसीकी ईजाद है। और कोई नहीं जानता। वहां इतनी ज़्यादा और ऐसी सभ्य मछलियां हैं कि बंसी में चारा तक नहीं देना पड़ता, यों ही ऊपर आ रहती हैं। लाल भैया के लिए ऐसी अनोखी जगह की कुर्बानी के लिए वह तैयार है।

प्रद्योत ने स्नेह से कहा—मुझे तो मछली का शिकार आता नहीं है। फिर कभी तुम्हारे पास आकर सीखूंगा।

निहायत ही लाल भैया नहीं रुकने के तो क्या किया जाए। दोनों भाई काफी दूर तक उसके साथ गए। सांझ हो गई और जब प्रद्योत ने किसी भी हालत में उन्हें और आगे न जाने दिया तो दोनों एक जगह रुक गए।

—फिर आओगे तो ?

—बेशक आऊंगा।

—कब ?

कमल ने जल्दी से कहा—कल !

—कल नहीं भैया, फिर कभी आऊंगा। भला ?

—अच्छा—कहकर विमल चुप हो गया। उसके बाद रुआंसा-सा होकर बोला—मैं मानो समझता ही नहीं। सब झूठ है। तुम अब नहीं आओगे।

अपने तईं इसकी सचाई को जानता था, इसीलिए प्रद्योत के मुंह से झूठे आश्वासन के शब्द निकलना नहीं चाह रहे थे। जरा देर कातर होकर चुपचाप उनकी तरफ देखते रहकर वह पीछे पलटकर तेजी से बढ़ गया।

दोनों भाई एक-दूसरे का हाथ थामे उदास देखते रहे उसे।

६

प्रद्योत कलकत्ते लौट आया। अमल बाबू के छात्रों को पढ़ाने के साथ-साथ दूसरा काम भी ढूंढ़ने लगा। उनके लौट आने के बाद अपनी रोज़ी का कोई ठिकाना तो आखिर चाहिए। बहरहाल नई ज़िंदगी के बड़े-बड़े मसले जीने की मोटी ज़रूरतों में दब गए।

कभी-कभी वह हैरत में आकर सोचता कि दूसरे दस लोगों से मानो उसका अब कोई फर्क नहीं रहा है। उन्हींकी तरह गुज़ारे की फिक्र में ही वह भी डूब गया है। इसके सिवाय दूसरा कुछ सोचने की फ़ुर्सत कहां। उसके अतीत और वर्तमान के बीचों-बीच विस्मृति की जो दीवार खड़ी है, इसकी उसे याद भी नहीं रहती। उसके अगल-बगल उसी जैसे जो लोग अभाव और गरीबी की तनी भंवों के नीचे रहते, कुछ न कुछ अतीत होते हुए भी, उसकी याद का अवकाश उन्हें कहां रहता है, इस हिसाब से प्रद्योत का उनसे शायद फर्क नहीं!

लेकिन फर्क कुछ है ज़रूर!···अमल बाबू के दोनों छोटे भाइयों की याद आ जाती। कौन जानता था कि एक ही दिन में वे इस तरह उसके हृदय पर कब्ज़ा कर बैठेंगे! एक बेबस लता-सा उसका मन एक सहारे के लिए अकुला रहा था, आश्रय के लिए अपने चारों तरफ के सूने आसमान में टटोलता फिर रहा था। जानते हुए भी कि यह बेकार, फिर भी एक नाचीज़ घास की भी वह उपेक्षा नहीं कर सका। लेकिन वह जानता था कि यह बेकली उसकी बेकार है। किस्मत ने उसे बीच धारा में ढकेल दिया है, तट से नाता जोड़कर जड़ रोपने की कोशिश

बेकार है। मिट्टी का निश्चित आश्रय उसके लिए असम्भव है, शिशुओं के चार नन्हे हाथों से किनारे की मिट्टी चाहे जितना ही क्यों न बुलाए, नदी का प्रवाह उसे खड़े होने का मौका नहीं दे सकता ! उसे अजाने भविष्यत् की ओर बह जाना पड़ेगा। लोगों से उसका भेद यहीं है, ऐसा बेपनाह होने का !

दसेक दिन में अमल बाबू के आने की बात थी। उनके आने के तीन दिन पहले प्रद्योत को अचानक एक काम मिल गया। काम लड़कों को पढ़ाने का ही था, मगर तनखा अच्छी थी। फिलहाल रोटी की फिक्र से पिंड छूटा। मुफस्सिल के एक धनी ज़मींदार अपने बच्चों को पढ़ाने के लिए एक शिक्षक की तलाश में थे। अमल जिन लड़कों को पढ़ा रहा था, उन्हींमें से एक की सिफारिश पर उसे यह काम मिल गया। सातेक दिन में वहां जाना पड़ेगा।

उसने तै कर लिया, अमल बाबू आ जाएं, उनका भार उन्हें सौंपकर वह चल देगा। जाने में कोई हिचक न थी उसे। उसके लिए हर जगह एक-सी। मगर अमल बाबू को हो क्या गया ? दस की जगह पन्द्रह दिन निकल गए, फिर भी आने का नाम नहीं। आज-कल करते-करते उसने पांच दिन काटे। जैसे बीमार पड़े थे वे, उस हिसाब से आने में दस के बजाय पन्द्रह दिन लगना कुछ अजीब नहीं। लेकिन पन्द्रह रोज़ के बाद भी जब आने के लक्षण नहीं दिखाई दिए तो वह सोच में पड़ गया। लेकिन और इन्तज़ार करने का समय भी नहीं रह गया था। इन्हीं कुछ दिनों में वह खूब समझ गया कि नौकरी मिलना आजकल क्या मुसीबत है। उसके चलते कहीं यह मौका हाथ से निकल गया तो क्या होगा, कौन जाने।

उसने एक खत में सब कुछ खोलकर अमल बाबू को लिखा और सूचना दी कि दो ही एक दिनों के अन्दर अगर वे नहीं आ जाते हैं तो

लाचार सारे ट्यूशन छोड़कर उसे चला जाना पड़ेगा। किसी वजह से अगर आना सम्भव न हो तो बदले में किसी और को देने का इन्तजाम करें।

प्रद्योत के नये काम पर जाने का दिन आ धमका, मगर अमल बाबू का कहीं पता नहीं। चिट्ठी का जवाब तक न दिया। वह अमल बाबू पर नाराज़ हुआ। आड़े वक्त में उनसे जो मदद मिली, उसके लिए वह उनका एहसानमन्द था और कृतज्ञता के उस ऋण को चुकाने का भरसक प्रयत्न भी किया। लेकिन अब अपने भविष्य को खतरे में डालकर उनके आसरे बैठे रहना सम्भव न था। अगर अमल बाबू ने ऐसी उम्मीद की है, तो भूल की है उन्होंने। कम से कम खत का जवाब तो देना ही चाहिए था। उनकी इस गैर-ज़िम्मेदारी को वह हर्गिज़ नहीं माफ कर सकता।

अमल बाबू पर नाराजगी के बावजूद उनके काम को छोड़कर चल देने में जाने कैसी झिझक हो रही थी उसे! हाथ से इन लड़कों के निकल जाने पर उनके घर-परिवार की क्या दुर्दशा होगी, इसकी कल्पना करने का भी साहस नहीं हो रहा था उसे। अपने को उसने ज़रूर तसल्ली दी कि अमल बाबू अगर जान-सुनकर खामखा अपना काम बिगाड़ें तो इसका उसे क्यों सिरदर्द हो! जहां तक बन पड़ा, मदद करने में वह बाज़ न आया। अब काम रखना न रखना खुद अमल बाबू पर है। लेकिन लाख समझाने के बावजूद मन में कहीं एक कांटा-सा रह जाता था; एक बेचैनी-सी हो रही थी।

जो भी हो, सुबह वह जाने की तैयारियां करता रहा। इसी बीच उसने अमल बाबू को दूसरा भी खत भेजा था। उसमें उसने जताया था कि खत का जवाब न पाकर मैं बहुत चिंतित हूं और चूंकि अब देर करने से नई जगह के हाथ से निकल जाने का डर है, इसलिए लाचारी मुझे माफी मांगनी पड़ रही है। कमल-विमल के बारे में पूछना बेकार ही था,

फिर भी दो पंक्तियां लिखे बिना न रहा गया।

मन में बहुत खटका हुआ। कहीं फिर से तो बीमार नहीं पड़ गए वे ? शायद हो कि इसलिए खत का जवाब नहीं आया ! जबरन इस संदेह को अपने मन से उसने निकाल देना चाहा। लेकिन इस उधेड़-बुन में तैयारियों में उसकी रुझान न रही। यह सन्देह बेवजह ही होगा। अमल बाबू ज़रूर चंगे हो चुके हैं। सोचना बेकार है। और सोचकर भी क्या करना। दुबारा भी वे बीमार पड़े हों तो उनके लिए अपना नुकसान कैसे उठाया जा सकता है ? उसने बोरिया-बिस्तर बांधा और होटल का पावना चुका देने के लिए गया।

मैनेजर बाबू ने पहले ही उसके जाने का मतलब, कहां जाना है आदि बातें जान ली थीं। यह उनकी फितरत है। प्रायः ही गर्व से कहते फिरते— अजी सा'ब, होटल हुआ तो क्या हुआ, बात तब है जब रहने वालों को वहां घर की कमी न खटके। मैं उनसे न केवल रकम, बल्कि दुःख-सुख का हिस्सा भी लेता हूं। वे यह भी कहने से बाज न आते कि चूंकि महज़ व्यवसाय का नाता मैं नहीं रखता इसलिए किस तरह से कितनी बार नुकसान उठाना पड़ा है। व्यवसाय से परे का नाता जोड़ने के कारण प्रद्योत को कई बार उनसे बहुत तंग होना पड़ा था।

प्रद्योत के दिए रुपयों को एक बार मेज़ पर, एक बार पेपर-वेट पर, फिर एक बार फर्श पर बजाकर उन्होंने कहा—तो आज ही चल दिए !

रसीद लेकर प्रद्योत खिसक पड़े, तो जान बचे। वह चुप रहा। मैनेजर बाबू को लेकिन रसीद देने की जल्दी न पड़ी थी। मेज़ की दराज़ में उन रुपयों को उलट-पलटकर फिर से देखने के बाद रखते हुए बोले—क्या बताऊं आपसे ! इतने दिनों से होटल चला रहा हूं, पता है आपको, यही ओल्डेस्ट होटल है। ओल्डेस्ट और बेस्ट; कलकत्ते में जब घोड़े की ट्राम चलती थी, तब से है। तब मैं ज़रूर नहीं था, मेरे मामा

थे। असल में शुरुआत उन्होंने ही की। मामा के बाल-बच्चा न था—डाइबिटीज की बीमारी, देख-सुन नहीं पाते थे ठीक से। मैं उन दिनों बी.ए. पास करके बेकार बैठा था, काम नहीं था कोई—काम भी क्या, नौकरी कहिए—मगर मैंने तय कर लिया था कि नौकरी नहीं करूंगा। अपने तीन पुश्त में किसीने भी नौकरी नहीं की। अपने खानदान में—घोड़े की ट्राम से लेकर अपने परिवार के इतिहास के किस कीमती सफे तक वे अपने व्याख्यान को ले जाते, पता नहीं। लेकिन प्रद्योत की आजिज़ी पर निगाह पड़ गई और तीर छोड़ी हुई प्रत्यंचा की तरह तुरन्त वे अपनी जगह पर आ गए। कहा—हां, इतने दिनों से होटल चला रहा हूं, पर अभी तक अपने मन को सख्त नहीं बना सका। दो ही दिन के लिए कोई आता है, तो भी माया हो जाती है। जाने लगता है तो लगता है मानो कितने दिनों का एक अपना आदमी जा रहा है। मन को समझाया करता हूं—यह सब बला तुझे क्यों, तू चलाता है होटल, खाने को दे, रहने को दे, अपना दाम ले, बस। कौन आया और कौन गया, इससे तुझे क्या। होटल तो होटल ही ठहरा, माया से दुनिया में ही क्या होता है। पकड़कर रख सकता है किसीको ? अपने दादाजी कहा करते थे···उन्हें आपने देखा नहीं, आप ही वाले कमरे में रहते थे। संन्यासी-से आदमी। कोई झमेला नहीं। बड़े भले आदमी। वही कहते थे—अबे, यह होटल नहीं है, होटल नहीं। गौर से देख तो इसीकी मैनेजरी से तेरा उद्धार हो जाएगा। कहां से कौन आता है, वही में नाम लिखाता है और मीयाद पूरी हो जाने पर कहां चला जाता है ! सोच तो देख ज़रा। मगर लाख कहिए, होता क्या है ! माया नहीं जाती ! कोई जाने लगता है तो जी कैसा तो करता है !

इस अनुभूति के मर्म को किसी हद तक समझकर प्रद्योत ने कहा—न हो तो रसीद फिर कभी दे दीजिएगा।

—न-न, दे रहा हूं। लेते ही जाइए। —उन्होंने रसीद-बही निकाली। और कलम को दवात में डुबोकर हताश-से बोले—फिर कभी भेंट होगी या नहीं, भगवान् जाने। मगर मेरा कहा रहा, कभी अगर इधर आना हुआ, तो यहां पैरों की धूल देना न भूलें।

दवात से कलम निकालकर लिखने की तैयारी की तो फिर बोल उठे—अब की लौटेंगे तो क्या इस होटल में उतरना आपको जंचेगा।··· खयाल भी न रहेगा।

खीज तो हुई, फिर भी मैनेजर बाबू की इस अनोखी भविष्यवाणी पर अचरज प्रकट किए बिना उससे न रहा गया।

मैनेजर बाबू बोले—मैंने तो पहले ही कह दिया, अब आप एक ठिकाने जा लगे। लड़कों को पढ़ाना है तो क्या, मजे का काम जुटा लिया है। सुई बनकर पैठें और फाट बनकर निकलें। अपनी आंखों देखी बात है। अपना ही एक रिश्तेमंद मास्टरी करता था कहीं, दोनों जून दाना तक नहीं नसीब होता था। उसके बाद पांडववर्जित इलाके में किसी ज़मींदार के यहां उसे मास्टरी मिल गई। हर कोई जाने से मना करता था : उस जंगली इलाके में जाकर क्या होगा। लेकिन उसने एक न सुनी और आज कलकत्ते में दो मकान हैं, दो गाड़ियां दौड़ा रहा है। मास्टरी से सिरिश्ते में, उसके बाद मिली तालुके की नायबी, उसके बाद जमींदारी के बने मैनेजर—यह सारा कुछ मेरे देखते-देखते कुछ ही सालों में हो गया। पांच ही साल के अन्दर मोटा और लाल बन गया।

अचानक कनखी मारकर मैनेजर बाबू बोले—बेशक अंदरूनी बात है इसमें। बड़े घरों की वे घिनौनी बातें कहते भी कैसा लगता है····

प्रद्योत की तरफ ताककर जाने क्या सोचकर उन्होंने अपने को उस उपादेय अवर्णनीय बात के लोभ से बचाया। कहा—अभी रसीद लिखे देता हूं ! ऐसी जल्दी तो नहीं है कुछ। गाड़ी तो आपकी एक बजे जाती है न।

प्रद्योत ने मैनेजर बाबू की आधी बात नहीं सुनी। मन ही मन वह कोई दूसरी बात गहराई से सोच रहा था। उनके प्रश्न से सहसा सजग होकर कहा—जी नहीं, मैं अभी तुरत जाऊंगा।

—अभी तुरत ! अभी तो दस ही बजे हैं। गाड़ी तो एक बजे की बताई।

प्रद्योत ने थोड़े में कहा—अभी मैं और कहीं जा रहा हूं। काम वाली जगह को नहीं जा रहा हूं आज।

—आज नहीं जा रहे हैं।—वे रसीद काट चुके थे। हताश होकर ताकते हुए बोले—पहले ही बताना चाहिए था।

—तो क्या हुआ ? आपके रुपए तो चुका दिए। कल आकर अपने सामान को ले जाऊंगा।

मैनेजर बाबू के चेहरे का भाव बदल गया। जरा रूखे-से होकर बोले—सामान रहेगा तो मेरा कमरा भी तो रहेगा।

खीजकर प्रद्योत ने कहा—एक दिन का किराया ले लें आप।

फिर भी नाखुश होकर ही वे बोले—किराया तो खैर ले लेता हूं, मगर नाहक ही रसीद-बही का एक पन्ना गया।

७

दो दिन की और मुहलत मांगते हुए प्रद्योत ने अपने भावी मालिक को एक चिट्ठी लिखी और दरवाक के लिए रवाना हुआ। यह निश्चय उसने मैनेजर के कमरे में ही बैठकर कर लिया था। यों उसने बार-बार अपने मन को समझाया कि सब कुछ ठीक-ठाक करके नए काम पर जाने में कोई गुनाह नहीं, फिर भी उसे शांति नहीं मिल रही थी। उसके नए जीवन की यही पहली उलझन थी, कर्तव्य की समस्या यही पहली बार उसके सामने आई। तो क्या पहले ही इम्तहान में वह शिकस्त खा जाए? अमल बाबू वास्तव में उसका कोई नहीं, ऐसी हालत में उसका कोई फर्ज़ ही नहीं—इन बातों से वह मन को दिलासा नहीं दे सकता। अपनापन का जो गहरा से गहरा अर्थ है, उस हिसाब से भी वह अमल बाबू को नहीं टाल सकता। उसके इस नए जीवन के प्रथम आत्मीय तो वही हैं। उन्हीं लोगों से उसके मन के स्नेह-सूत्र की पहली गांठ पड़ी है। सो अपना काम हर्ज चाहे हो, जाकर अमल बाबू की खोज-खबर लेनी ही पड़ेगी। उसने खूब समझा कि नए जीवन की शुरूआत में ही ऐसी एक खामी रह जाने से उसे चैन नहीं पड़ने की। और वैसा कुछ हर्ज नहीं भी हो सकता है। महज दो दिनों से क्या आता-जाता है।

गांव की डगर जानी-चीन्ही थी। अमल बाबू के यहां पहुंचने में देर न लगी। चलते-चलते उसे कमल-विमल से पिछली बार रुखसत होने की बात याद आ रही थी। वह सोच भी न सका था कि यहां फिर आना पड़ेगा।

बादलों से ढका आकाश गांव पर झुक पड़ा था। उस उदास रोशनी में जंगल-झाड़ियों से भरा गांव और भी छोड़ा हुआ-सा, और भी सूना लग रहा था। जिस तालाब के किनारे विमल से उसकी पहली भेंट हुई थी, उसके पानी की तरफ ताके बिना उससे न रहा गया। मानो आज भी विमल की झांकी दिखाई पड़ती हो वहां, हालांकि विमल वहां था नहीं। घर के बिल्कुल करीब पहुंच जाने पर भी उसे उन दोनों भाइयों के कहीं दर्शन न हुए। कहीं और गए हों शायद। इस बदली में वे निहायत सुशील-से घर में होंगे, इसका उसे यकीन न आया।

घर का दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। उसने ज़ंजीर हिलाई। कई बार अमल बाबू का नाम लेकर पुकारा। कोई जवाब नहीं।

ज़ंजीर को और ज़ोर से झनकारने तथा आवाज़ को और ऊंचा करके पुकारने पर पैरों की आहट सुनाई पड़ी। लगा, कोई दरवाज़ा खोलने आ रहा है।

प्रद्योत ने ज़रा हंसकर पूछा—कौन, विमल ? मगर कोई उत्तर नहीं मिला। दरवाजा खुल ज़रूर गया, लेकिन जिसने दरवाज़ा खोला, उसका पता नहीं ! किवाड़ के पल्ले की ओट में वह मूर्ति छिप गई थी।

कुछ अचरज से प्रद्योत ने पूछा—अमल बाबू घर में हैं—ज़रा देर तक फिर कोई जवाब नहीं। प्रद्योत ने समझा, शायद उनकी बहनों में से कोई दरवाज़ा खोलने आई थी। सो अपना परिचय देते हुए कहा—मैं अमल बाबू का मित्र हूं। कलकत्ते से आया हूं। एक बार पहले आया था यहां।

अब की दरवाज़े के बगल से मीठी-सी आवाज आई—आप ज़रा ठहर जाएं।

उनकी छोटी बहन ही दरवाज़ा खोलने आई थी। आंगन से वह सकुचाती हुई बरामदे की तरफ जाती दिखाई पड़ी। सब कुछ विचित्र ही लग रहा था प्रद्योत को। तो क्या अमल बाबू की बीमारी ज़्यादा बढ़

गई या बे-काम से कहीं गए हैं ? इस समय विमल-कमल मिल गए होते तो बहुत कुछ सहूलियत होती। लेकिन उनका पता न था। प्रद्योत समझ नहीं सका कि वह लड़की उसे रुकने को कहकर क्यों चली गई, इसलिए वह हक्का-बक्का हो रहा। घर में अजीब सन्नाटा। यह सन्नाटा वह नहीं जोकि दोपहर को गांवों में होता है। इसमें जाने बेचैनी भर देने वाला अजाना क्या है ?

दरवाज़े के पास खड़ा-खड़ा प्रद्योत ऊब रहा था। अन्दर सन्नाटा। वह लड़की मानो अन्दर गायब हो गई। प्रद्योत के जी में आया, अमल बाबू घर रहे होते तो उसे अन्दर लिवा जाने में इतनी देर करने की कोई वजह नहीं थी। लेकिन यह भी सोचना मुश्किल है कि वे नहीं हैं। फिर तो वह लड़की पहले ही बता देती।

लेकिन दुविधा के झूले में उसे और न झूलना पड़ा। सन्नाटा पड़ा घर अचानक मानो घने बादलों से घिरे आसमान के नीचे चिहुंक उठा। लड़खड़ाते पैरों अमल बाबू की मां उतरकर नीचे आने लगीं। उनकी करुणा भरी चीख ने प्रद्योत को विस्मय और वेदना से विमूढ़ कर दिया। ऐसी खौफनाक संभावना उसकी कल्पना में भी न आई थी। अब भी हृदय से उसे विश्वास नहीं हो रहा था। किन्तु मां की ऐसी चीख के बाद अविश्वास की गुंजाइश कहां थी। वहां खड़ा रहना उसके लिए दूभर हो गया। भाग खड़े होने की इच्छा होने लगी। भागने का उपाय नहीं था। रोती-पीटती बूढ़ी आई—तुम मेरे अमल को देखने आए हो, देख जाओ।

मां के पीछे लगे कमल-विमल आए और आकर उन्होंने प्रद्योत को जकड़ लिया। उनकी आंखों में भी आंसू थे, लेकिन उनके अश्रुपीड़ित मुखमंडल पर लाल भैया को पाने की जो खुशी फूट पड़ना चाह रही थी, उसे देखकर प्रद्योत का मर्मस्थल तक मरोर उठा। अकारण इतना प्यार पाने का सौभाग्य सहा नहीं जाता। सारा मन अपनी अयोग्यता की

अनुभूति से ही जड़ बना रहता। उसकी आंखों में आंसू आते नहीं, लेकिन तो भी मुंह फेरकर उसने कमल-विमल से अपने आंसू छिपाए। उसका हाथ खींचकर आंसू से रुंधे हुए कंठ से कमल ने कहा—भैया मर गए लाल भैया ! विमल ने डांटकर कहा—छिः, ऐसा नहीं कहते। वे स्वर्ग गए। हैं न लाल भैया ?

८

रुलाई आखिर थम ही जाती है कभी न कभी। इस घर का भी रोना रुक गया।

प्रद्योत अमल बाबू की खोज-खबर के लिए आया था। वह खबर उसे इस मार्मिक ढंग से मिली। अब उसे यहां रहने की जरूरत न थी। चाहता तो द्वार पर से ही हमदर्दी दिखाकर लौट जाता। वही शायद अच्छा भी होता। लेकिन न हो सका वैसा।

विमल-कमल उसे कसकर पकड़े खड़े थे। बूढ़ी के शोक का आवेश जाता रहा और वह थकावट और दुःख से दरवाजे के ही पास बैठकर हांफने लगी।

अमल बाबू के छोटे-छोटे भानजे, भानजियां अवाक् होकर उन लोगों की ओर देख रही थीं। दरवाजे के पास खड़ी थीं दोनों बहनें।

प्रद्योत को अजीब-सा लग रहा था। उसे ऐसा लगा, इस परिवार से उसका महज दो दिनों का ही लगाव नहीं है, बल्कि इनके दुःख-सुख आशा-भरोसा के साथ विधाता ने उसे बहुत पहले ही अविच्छेद्य बनाकर जोड़ दिया है। इन सब का भार उसीको ढोना पड़ेगा। इनके सुख-दुःख का हिस्सा लेना पड़ेगा। इस लगाव से इन्कार करने का उपाय नहीं।

कुछ देर में बूढ़ी कुछ शांत हुई। कहा—अंदर चलकर बैठो। दोपहर की धूप में इतनी दूर पैदल चलकर आए हो!

प्रद्योत 'ना' न कर सका।

जीवन की छोटी से छोटी जरूरत भी मौत से बड़ी होती है, इस

सत्य को आदमी शायद अपने अजानते ही समझता है। इसीलिए जीवन के कोलाहल से बार-बार भर जाती है मौत की शून्यता, ढक जाती है समाधि की रिक्तता।

उतनी बड़ी मौत की छाया में ही उसके बाद शुरू हो गई दैनंदिन जीवन की गति। लड़के आंगन में खेलने लगे, शाम को रसोई के लिए तीसरे पहर चूल्हा सुलगाया जाने लगा। चारों तरफ छोटी-मोटी हलचल।

प्रद्योत, विमल-कमल को साथ लेकर अन्दर जा बैठा। बादलों से घिरा आकाश मानो और भी अंधियारा हो उठा। पीछे के बांसों की झाड़ियों में हवा के झोंकों की आवाज़। जल्दी ही बारिश शुरू हो सकती है।

कमरे के अंदर छाया-प्रकाश में बैठे प्रद्योत ने उन दोनों भाइयों से अमल बाबू के अंतिम कुछ दिनों की खबरें जानीं। यह तो वह खुद भी देख गया था कि बुखार न रहने के बावजूद उनकी तबियत अच्छी नहीं थी। एक दिन वे ज़ोर-जबरदस्ती तलाब से नहा आए। बुखार आ गया। वही बुखार देखते-देखते घातक हो गया।

यह बात नहीं थी कि पैसों की कमी से इलाज हो ही नहीं सका। वहां के जो डाक्टर थे, उन्होंने बहुत ही मेहरबानी की। मगर मर्ज़ तब तक लाइलाज हो चुका था। चार दिन पहले सबेरे उनके हृदय की गति अचानक बंद हो गई। इन्हीं बातों के बीच एकाएक कमल बोल उठा—तुम्हें पता है लाल भैया, हम लोग यहां से चले जाएंगे? मां ने कहा है, हम सब मामा के यहां जाएंगे।

विमल ने छेड़ा—हां, मामा के यहां जाएंगे! मूर्ख कहीं का! मामा हैं भी अपने? एक मामा थे, वह तो कब के मर चुके।

दोनों भाइयों की ये बातें न भी होतीं, तो भी इस घर की हालत समझना प्रद्योत के लिए कठिन न था। वह अभी जानना चाहता था कि

इस मुसीबत के बाद से उनके दिन किस तरह चले और आगे गुजारे का क्या होगा। लेकिन इन बच्चों से यह कैसे मालूम होता। उनकी मां से यह पूछना ठीक भी होगा या नहीं, यह समझ नहीं पा रहा था।

बड़ी देर बाद उसने पूछा—क्यों विमल, इस गांव में तुम्हारे अपने कोई नहीं हैं ?

—अपने !—विमल जैसे सोच में पड़ गया। लेकिन कमल ने ज़रा भी आगा-पीछा न किया। बेखटके बोल उठा—तुम नहीं चीन्हते हो लाल भैया, बहुत से लोग हैं। वह वहां रतन का घर है और वह बांस की झाड़ियों के पास किसन है, नन्दू है, हाबू है···

बीच ही में धमकाकर विमल ने कहा—तू ठहर भी बाबा। इन्हें भी अपना आदमी कहते हैं ? वे अपना कोई होते भी हैं या अपनापा भी रखते हैं ? समझा लाल भैया, किसन के बाप ने हमारे बांस के बगीचे का कुछ हिस्सा हड़प लिया है।

दो बच्चों की बातचीत से और कुछ नहीं तो कम से कम उनकी दुनिया का थोड़ा-बहुत हालचाल समझ में आ रहा था। इतना समझ सकने में उसे दिक्कत न हुई कि चारों तरफ के लोभ और स्वार्थ के बीच ये अपने हक को भी ठीक से बचाकर नहीं रख पा रहे हैं। विस्मृति का पर्दा अभी भी उसके अतीत पर खड़ा था, फिर भी उसे क्यों ऐसा प्रतीत हुआ कि यह दम घुटाने वाली स्वार्थपरता उसके लिए कुछ अजानी नहीं है। जीवन जहां तेजहीन और निर्जीव-सा मौत के साथ कच्ची सुलह करके चल रहा है, वहां के मंद प्रभाव के क्लेद और ग्लानि को मानो वह खूब जानता हो।

लेकिन इन लोगों के लिए वह कर भी क्या सकता है, जुरंत ही क्या है उसकी ! किसी तरह अपना गुजारा चलाता है, उसीमें से इनकी थोड़ी-बहुत मदद तो की जा सकती है, परन्तु उससे इस परिवार की

समस्या का हल हो सकेगा ? सच पूछा जाए, तो इस परिवार को खड़ा रखना क्या आसान है ? अमल बाबू ने तो यही चाहा था और इसीकी कोशिश में अंत तक उन्हें अपनी जान भी गंवानी पड़ी। उनकी सारी जीवनी शक्ति धीरे-धीरे इन्हीं लोगों के लिए चुक गई।

इनके भविष्य की सोचकर सच ही प्रद्योत को कोई किनारा नहीं सूझ रहा था। लेकिन एक बात वह साफ समझ रहा था कि इनसे अब अपने भाग्य को वह अलग नहीं कर सकता, न ही वैसा करना वह चाहता है। इनका बोझा भारी चाहे जितना ही हो, उसे ढोने में उसका खुद का ही एक स्वार्थ है। अपने चारों ओर की असीम शून्यता में उसे एक आश्रय मिल गया है, ऐसा एक सहारा मिल गया है जिससे अपने इस नए जीवन को किसी हद तक सफल कर सकता है।

इन सारी घटनाओं के पीछे भाग्य का बहुत कुछ हाथ है। इस परिवार से परिचय, अमल बाबू की मृत्यु—यह सब कुछ मानो किसी अदृश्य नियति के ही इशारे पर हुआ है। इस इशारे की वह उपेक्षा नहीं कर सकता। किसी दिन अमल बाबू पर उसे रश्क हुआ था, आज उसकी कसौटी के लिए तकदीर ने उसे उसीके आसन पर बिठा दिया है। पीठ दिखाना नहीं सोहता। वह चाहता भी नहीं।

बाहर बड़ी देर से बूंदाबांदी हो रही थी। आकाश अब मानो पानी के भार को थाम न सका। मूसलाधार बारिश शुरू हो गई। घर-आंगन अंधेरा हो गया। छप्पर की जाने कब से मरम्मत नहीं हुई। कुछ ही देर में पानी चूने लगा।

कमल ने उत्साहित होकर कहा—लाल भैया, हमारे यहां और भी पानी चूता है, चलो चलो, देखना।

लेकिन प्रद्योत चुप बैठा रहा। जिस भार को वह खुद ही अपने कंधों पर उठा लेना चाह रहा था, उसकी गहराई को सोचने लगा।

जरा देर के बाद भीगती हुई अमल की मां अन्दर आईं। बोलीं—गांव के रास्ते की जो हालत है, कीचड़ से बुरा हाल। जाने में तुम्हें बड़ी तकलीफ होगी।

प्रद्योत ने कहा—आज नहीं जाऊंगा मां। बारिश न भी होती तो भी न जाता।

रात भी बारिश होती रही।

प्रद्योत के सोने का इंतज़ाम अमल बाबू के ही कमरे में किया गया था। खा-पीकर वह वहीं आकर बैठा था।

इसके पहले कमल-विमल उस कमरे के पास तक न जाते थे। लेकिन आज वहां से हटने का कोई लक्षण नहीं दीख रहा था। उन्होंने लाल भैया के साथ सोने का मनसूबा गांठ रक्खा था।

प्रद्योत ने कहा—रात हो गई, अब जाकर सो जाओ।

मगर उसकी सुनता कौन है। कमल ने एक बहाना ढूंढ़ निकाला, प्रद्योत ने जब कई बार कहा तो वह बोला—उस कमरे में कैसे सोऊंगा। बेहद चूता है।

अगर कमल चला जाए तो विमल का एकच्छत्र राज्य हो जाए, इसी लिए लोभ दिखाते हुए वह बोला—जा, बड़ी दीदी किस्सा सुनाएंगी।

लेकिन किस्से के लिए उसमें कोई रुझान न दिखाई पड़ी। वह सौभाग्य खुशी-खुशी भैया के लिए छोड़ते हुए उसने कहा—तुम्हीं जाओ। किस्सा सुनना तो तुम्हें ही पसंद है।

लाल भैया के सामने अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए विमल बोला—वाह, मैं बच्चों की कहानियां सुनना पसंद करता हूं? किताब में मैं उससे कहीं अच्छी कहानियां पढ़ता हूं।

बातों की लड़ाई में आखिर किसकी हार होती, कहना मुश्किल है। लेकिन इतने में मां आ पहुंचीं। उनकी बात का जवाब नहीं दिया जा

सकता था। लाचार दोनों को सोने के लिए दूसरे कमरे में जाना पड़ा। जाते-जाते विमल उसके कानों में कह गया कि मैं तड़के ही आऊंगा और घूमने के लिए एक ऐसी जगह ले जाऊंगा कि कमल लाख सिर मारे, पता नहीं पा सकता।

पता चला, भैया का मनसूबा कमल ताड़ गया। आधी दूर जाकर वह लौट आया और प्रद्योत के कान में कहा—भैया ने सुबह टहलने की बात कही न लाल भैया! देख लेना, मैं भैया से बहुत पहले ही जग जाऊंगा।

मां अंदर बैठी थीं। आंसू से रुंधे कंठ से बोलीं—इस कमरे में कदम रखने की इच्छा नहीं होती बेटे। मगर दूसरा कोई कमरा नहीं कि तुम्हें सोने के लिए दूं।

कहते-कहते वे रो पड़ीं। उन्हें भरोसा देने की व्यर्थ चेष्टा न करके प्रद्योत चुपचाप बैठा रहा। बूढ़ी जब ज़रा शांत हुईं तो बोला—अब आप लोगों का चलेगा कैसे?

निहायत मामूली-सा सवाल। लेकिन इसीके लिए उसे शाम से ही खुद को तैयार करना पड़ा था। एक अच्छा इरादा करने में तो कोई देर न लगी, लेकिन काम के वक्त उसमें ऐसी अड़चन आएगी, प्रद्योत यह सोच नहीं सका था। अपने को वह इस परिवार से जोड़े रहना चाहता है, पर यह विचारणीय है कि ये लोग इसे किस भाव से ग्रहण करेंगे। आपस में ऐसा कोई रिश्ता नहीं। एक मामूली परिचय से इतनी घनिष्ठता पर उतर आना न तो सहज है, न शोभन ही। इसीलिए इतनी देर तक वह दुविधा में रहा। जबरन उपकार करने की इस इच्छा में एक बेशर्मी की बू पाकर वह सकुचा-सा गया। हर पल उसे यही आशंका होती रही कि इनके अभावों की खोज-पूछ में कहीं कोई अपमान न कर बैठे। कुछ भी हो, आखिर वह बाहरी आदमी ही ठहरा। अमल बाबू का एक

दोस्त ही तो। परिवार से काफी घुला-मिला नहीं है। कमल-विमल के बाल-मन ने उसे अपनाया ज़रूर है लेकिन परिवार के और लोग वैसा न भी सोच सकते हैं और न भी सोचें तो अस्वाभाविक नहीं। अपने जीवन के सूनेपन से जिस आग्रह को लेकर उसने इस गरीब परिवार को अथाह के तिनके की तरह पकड़ना चाहा है, यह इन्हें न भी सुहा सकता है। शायद हो कि वह सचमुच ही अपने अधिकार की सीमा पार कर रहा हो।

इसीलिए बूढ़ी से सवाल करके वह बहुत ही सकपका गया। लेकिन उसकी आशंका निर्मूल थी। लगा, बूढ़ी ने उस प्रश्न को सहज रूप में ही अपनाया। कुछ ठहरकर वे बोलीं—जवाब क्या दूं बेटे, चलने की तो कोई सूरत नहीं नज़र आती।

प्रद्योत की हिम्मत बढ़ी। बोला—कमल-विमल की पढ़ाई का भी तो सोचना है। ज़्यादा उमर हो जाने से पढ़ाई में जी न लगेगा।

अमल बाबू की मां ने कहा—मुझे तो उससे भी बड़ी दूसरी चिन्ता है बेटे। ये मर्द हैं, कुछ न बनेगा तो मोटिया का काम करके भी पेट पाल लेंगे। लेकिन निर्मला की शादी की उम्र बीत रही है। उसका अब ब्याह न कर पाई तो मुंह दिखाना मुहाल हो जाएगा। अभी ही जाने लोग कितना कुछ कहने लगे हैं।

यह तो प्रद्योत ने सोचा ही न था। ज़रा देर सन्न-सा रहा, फिर पूछा—अभी आपको आमदनी का ज़रिया क्या है?

—आमदनी!—हताश होकर मां बोलीं—अमल की तनख का ही सहारा था। अब यह मड़ैया भर है। इसीको बेच-खोचकर अगर इस लड़की का उद्धार करा सको तुम लोग।...

—लड़की का उद्धार हो गया, मान लिया। मगर यह मड़ैया बिक जाने से आप सब रहेंगे कहां, बच्चे खाएंगे क्या?

भाग्य की दुहाई देकर वे बोलीं—जो भगवान् देंगे। सिर छिपाने को पेड़ों की छाया रहेगी, मांगने को भीख !

प्रद्योत चुप रहा। बूढ़ी फिर बोलीं—न भी बेचूं तो जगह-ज़मीन रक्खी तो न जा सकेगी। अमल के जीते जी ही लोग दबाने लग गए थे। पोखरे मुखर्जियों ने ज़बर्दस्ती भर लिया। और हिस्से का दाम न दिया। कागज़ात तो हैं नहीं, झगड़ा कौन करे उनसे ! बोसों ने बांस के बगीचे का आधा दखल कर लिया है। अब तो उन्हें खुलकर खेलने का मौका मिल गया। दो नाबालिग लड़के हैं और उनकी अभिभाविका मैं असहाय बूढ़ी। जो चाहे सो करेंगे लोग। इससे तो बेच ही डालना अच्छा है। अमल की बीमारी में ही पालबंधु खरीदना चाह रहे थे। दाम चाहे जो लगे, कुछ तो रुपए मिल जाएंगे।

प्रद्योत को अब मानो बल मिला। वह बोला—पानी के भाव बेचना तो न होगा, चाहे जो हो।

हताश-सी बूढ़ी बोलीं—हमारी पीठ पर कोई है जो नहीं बेटा ?

प्रद्योत चुप रहा।

९

प्रद्योत उसी होटल में रह गया। अपनी नई नौकरी उसे आखिर छोड़नी पड़ी। दोनों शाम लड़कों को पढ़ाता। अमल बाबू की तरह रात को भी पढ़ाने के लिए कोई मिल जाता, तो उसे आपत्ति नहीं—खीझ नहीं। मन के दिगंत में कहीं क्षोभ न था उसके, समूचा आकाश उत्साह की जोत से झलमला रहा था।

नई ज़िंदगी शुरू हुई। काली यवनिका पर खिंच आई पहली रेखाएं। उन रेखाओं की बुनाई से सारी शून्यता शीघ्र ही भर जाएगी, ऐसी उम्मीद होती है। इसी बीच मन में स्मृतियों का संजोना भी शुरू हो गया। उसकी जिंदगी को घूमने के लिए एक केन्द्र मिल गया। उसकी अपनी भी एक दुनिया हो गई, जिसपर कि उसका अपना अधिकार था। इसके लिए वह अपने भाग्य का कृतज्ञ था।

निहायत मामूली बातों में ही उसके मन में उत्साह और आनन्द की ऐसी लहरें लहरातीं कि सोचकर दंग रह जाना पड़ता। ऐसा खास कुछ नहीं। जी-जान से वह अमल बाबूकी तरह लड़कोंको पढ़ाता। मितव्ययी का आदर्श-सा बनकर पैसे बचाता और हफ्ते के छह दिनों तक वह एक दिन की आशा में उत्कंठित रहता। लेकिन इन्हीं मामूली बातों में मानो परम रहस्य का स्वाद था, दुरूहतम साधना की उत्तेजना थी। इसीमें वह डूबा रहता, उसका मन आनन्द के अनोखे रस से सराबोर रहता। वह मानो नए कुछ की सृष्टि कर रहा हो ; एक नए ही जगत्, मनुष्य के इतिहास के एक नए ही अध्याय की रचना कर रहा हो। किसी कठिन बीमारी से चंगा होने

के बाद सारी इन्द्रियां, सारी अनुभूतियां तेज़ हो उठती हैं, मन और भी अधिक तीव्रता से जीवन का स्वाद पाता है। और प्रद्योत तो रोग नहीं बल्कि साक्षात् मृत्यु के शून्य अन्धकार से जीवन की अपार तृष्णा लेकर जागा था। जागा था तीव्रतर अनुभूति, जीवन की बारीक विलासिता की भूख लेकर। उसके लिए कोई चीज़ तुच्छ न थी। आदत की थकावट से जिनके लिए जीवन का स्वाद रसहीन हो उठा है, वे प्रद्योत के इस तीखे उपभोग का मर्म हर्गिज़ नहीं समझ सकते।

इस बीच प्रद्योत कई बार दरवाक आया-गया। उस परिवार से सहज सम्बन्ध हो जाने में कठिनाई न पड़ी। इस सहजता में सब से ज़्यादा सहायक हुए अमल बाबू के वे दोनों छोटे भाई। उनके स्नेह ने घनिष्ठता की राह को सहज-सुगम कर दिया।

आजकल सनीचर के सबेरे ही आनन्द और उत्तेजना से प्रद्योत के हृदय में विचित्र बेचैनी रहती। होटल के रहने वाले लगभग सभी नौकरी-पेशे वाले थे। हफ्ता भर वे सब भी सनीचर के लिए उत्सुक रहा करते। मगर उनमें से शायद किसीकी भी अनुभूति में ऐसी तीव्रता न थी।

सुपारी-नारियल के पेड़ों की भीड़। उन्हींकी छाया में पत्तों की छौनी का एक घर मिट्टी का—सूखी माटी का अंगना ठनकता रहता। एक तरफ अनार फूला था। छायाशीतल हवा में भुरभुराती महक। रह-रहकर प्रद्योत को इसकी याद आ जाती। नए प्रेम की कल्पना जैसी यह छवि उसके हृदय को अनोखे ढंग से झकझोरती, अजाने मन में लहरें उठाती। उसके भी एक एकांत आश्रय है—छुट्टी में विश्राम और स्नेह-सहानुभूति के उत्ताप में दिन बिताने का एक बसेरा है; सोचते ही मन आनन्द से सिहर उठता।

बड़ी दीदी के बच्चों के लिए कौन-से नए खिलौने ले जाए। कमल-विमल के लिए कौन-सी नई भेंट अच्छी होगी—यही सब सोचता हुआ

वह पढ़ाने जाता। पढ़ाना ठीक बनता नहीं। तीसरे पहर के लिए छटपटाता रहता उसका मन।

सामान वह दोपहर में ही खरीद लेता। गांव-घर में न मिले, ऐसा कोई अनाज, सस्ता खिलौना, कीमत से ज़्यादा जिसकी चमक की चकाचौंध, दीदी की कथरी सिलाई के लिए सूते की गोली, कमल के लिए लट्टू और लत्ती''''ऐसी ही जाने कितनी चीज़ें उसे बटोरनी पड़तीं। सारा इन्तज़ाम तीसरे पहर से पहले ही हो जाता। फिर स्टेशन जाकर गाड़ी की इन्तज़ार का भी सब्र नहीं रहता। मानो महज़ उसीने यह समझा है कि समय कितना कीमती होता है।

गाड़ी लेकिन अपने समय पर ही आती। छोटी-सी गठरी लिए प्रद्योत तीसरे दर्जे के किसी डब्बे में खिड़की के पास जा बैठता। उसके मन से उल्लास की प्रतिध्वनि गुंजाती हुई गाड़ी चल पड़ती। प्लेटफार्म, ओवरब्रिज, शहर के एक जीर्ण हिस्से को छोड़कर गाड़ी देखते ही देखते खुले मैदान में जा निकलती।

बरसात बीत चली थी। हरियाली का ओर-छोर-हीन समुद्र, उसीके बीच-बीच में टापुओं से तैरते किसानों के गांव और इस दृश्य पर उदास हंसी जैसी डूबते सूरज की किरणें। प्रद्योत खिड़की पर सिर टेककर तृप्ति से आंखें बन्द किए लेता। इतना मीठा, इतना मधुर है जीवन का स्वाद! एक दिन जिस गांव का उसने दूर से अलग-थलग विचार किया था, आज उसके लिए उसीका रूप एकबारगी बदल गया था।

एक छोटे-से स्टेशन पर गाड़ी रुकती। आगे की राह मानो उसे कंठस्थ हो गई हो। कंठस्थ चाहे हो, पर वह राह पुरानी कविता-सी मीठी लगती। उसे बार-बार दुहराकर गाड़ी मानो उसका नया अर्थ, नया संकेत बता जाती। कहीं कोई छोटी-सी पुलिया गाड़ी की आवाज़ भारी होते न होते निकल जाती; दुबली रेखा-सी कहीं दौड़ गई है पानी की

पतली लकीर इससे उस बैहार को जोड़ती हुई; किसी छोटे-से मन्दिर को केन्द्र बनाए खेतिहार के मुट्ठी भर घर के गांव ने क्षितिज का छोर छूकर उसे अनोखा ही बना दिया है; उसके बाद दूर तक फैली दलदल ज़मीन आसन्न संध्या की मलिन आभा में रचना करते-करते थके-हारे विधाता की उदासी-सी पड़ी; उनमें न तो कहीं स्पन्दन, न रंग और रेखा की व्यंजना। अपार धुमैला सूनापन—न ओर न छोर। लेकिन गाड़ी उसे भी पार कर जाती, फिर नाजों से झूमते हुए हरे-भरे खेत दिखाई देते, आंकी-बांकी जलधारा, जलधारा पर दूर गांव को जाने वाली डोंगियां। उसके बाद कोई पतली-सी नदी, आंसू की विनती-सी जाने कहां से निकलकर आई है। गाड़ी की आवाज़ आवेग से गहरी हो आती, शायद ज़रा कांप उठती। फिर धीमी पड़ जाती चाल। लोहे के गेट को थामे नीली वर्दी, लाल पगड़ी वाला पोएंट्समैन खड़ा होता। प्रद्योत उसको जानता है, जानता है उसकी गुमटी को। जो आदमी हाथ हिलाकर गाड़ी को उत्साह देता, गेट के उस पार टप्पर वाली गाड़ी लिए जो गाड़ीवान रेलगाड़ी को देखता होता, माथे और पीठ पर बोझ लिए जो पुरुष-स्त्रियां चलती गाड़ी को निहारतीं—सब जैसे प्रद्योत के जाने-चीन्हे हों। उसके बाद कहां कौन-सी शाखा लाइन गाड़ी की राह से चौकन्ने अजगर जैसी निकल जाती, कहां से दीखती डिस्टैंट सिगनल की समय देने वाली रोशनी, कहां गांव के छिट-पुट घर गाड़ी के स्वागत के लिए आगे बढ़ आते—सब-कुछ उसका जाना हुआ है।

सांझ घनी हो आई। अंधेरे में आसमान और ज़मीन मिलकर मानो एकाकार हो जाएंगे। इसी दशा में छोटे-से स्टेशन की मद्धिम बत्तियां स्नेह भरी मीठी बातों-सी प्रतीत होतीं। प्रद्योत उतर पड़ता। गाड़ी चली जाती, तो वह धीरे-धीरे लाइनों को पार करता। उस पार भी लाल रोड़ियों वाला प्लेटफार्म। मेंहदी के पौधों की भीड़ से रेलिंग साफ नहीं

दीखती, कोरोगेट की छौनी का एक शेड, वही मुसाफिरखाना है, वही टिकटघर। स्टेशन का नाम-लिखी बत्ती—टिकटघर की दीवार से हलकी-सी रोशनी जाकर शेड के अंधेरे में खो जाती। उसी शेड को पार करके सीढ़ियां उतरकर प्रद्योत राह पकड़ता।

बैहार से कुछ दूर तक जाने के बाद वह राह गांव के समीप पेड़-पौधों की घनी छाया में खो गई है। जाते-जाते वह पीछे मुड़कर एक बार देखता। सूनी बैहार के बीच के उस छोटे-से स्टेशन के लिए भी उसे खासा आकर्षण है। इसकी तस्वीर आजकल उसके जीवन से घुल-मिल गई है।

चौड़े रास्ते के बाद खेतों की मेड़ों पर की पगडंडी, वहां से झाऊ के नीचे के नाले पर खजूर के तने की पुलिया पार कर गांव के भीतर की अंधेरी गली, किसानों के धान की मोरी, सोहजन के पेड़ों वाले घरों के किनारे-किनारे, फिर सेंवार वाले पोखरे के बाद लम्बी अंधेरी राह—सब को प्रद्योत मज़े से पार कर जाता। कहीं ऊब नहीं आती। इसकी जंगली शक्ल ही उसके लिए कीमती हो उठी है।

उसके बाद घर के दरवाज़े पर हल्की-सी थपकी देना, इस उत्तेजना की तुलना नहीं। थपकी चाहे जितना ही धीरे वह लगाए, अन्दर उसके इन्तज़ार में कान सजग रहते। कमल-विमल की खुशी की किलक—उसके हाथ से गठरी झपट लेने का झगड़ा। बड़ी दीदी का उलाहना।

उसके बाद झींगुर की झनकार से गूंजते हुए अंधेरे बरामदे में चटाई डालकर उस गठरी का खोलना। चारों तरफ से सब उसे घेरकर खड़े हो जाते। कमल तो जैसे लुढ़क ही जाता पोटली पर। धीरे-धीरे रूपकला की जादू की डिबिया जैसी वह गठरी खुलती।—अरे रे, गोभियां इस समय कहां मिल गईं ? बड़ी दीदी के गले में अचरज भरी आवाज़। प्रद्योत की जेब टटोलकर कोई चीज़ मिली और मारे खुशी के कमल चीख उठा।

विमल उसके पीछे पड़ गया पता लगाने के लिए। लेकिन कमल छिपा तो सकता नहीं खुशी की खबर—सारी दुनिया को ढोल पीटकर जताना चाहता।—'लट्टू, लत्ती···भैया से अच्छी है मेरी।' उसकी यह खुशी दूसरे गांव वालों तक भी पहुंचनी चाहिए।

अब बहाना-सा बनाकर प्रद्योत गठरी को समेट लेता। हताश होकर कहता—निर्मला की ऊन लेकिन नहीं मिली बड़ी दीदी। शहर की लड़कियों ने आजकल बुनाई बन्द कर दी है। इसीलिए दूकानदार रखते नहीं। इस शरारत में बड़ी दीदी साथ देती। हंसकर कहती—वही तो, मुसीबत हुई। निर्मला होंठ टेढ़ा करके कहती—मैंने ऊन लाने को जैसे कहा था किसीसे। और वह वहां से हट जाना चाहती। जब तक मां टपक पड़ती—अहा, चिढ़ाना क्या बेचारी को! यही तो रहा ऊन!'

इसके बाद ऊन निकल पड़ती, कुछ खिलौने। आनन्द के कोलाहल से किलक पड़ता अन्रा। शायद विमल ही ज़रा नाखुश होता पतंग उड़ाने की लटै के बदले रूलदार कापी पाकर। मगर यह नाखुशी ज़रा देर की होती। कापी की लिपि-कुशलता को मात देने के उत्साह में वह चटाई से कमल को खदेड़कर अपना बस्ता और दवात फैलाकर बैठ जाता।

एक मीठी-सी दुनिया। कौन कहे कि इस घर से मौत की छाया पंछ नहीं गई। कौन कहे कि इस दुर्बल संसार के चारों तरफ लोभ और स्वार्थपरता मौके की ताक में है। कहने की ज़रूरत भी क्या? हर बात हर समय याद भी नहीं करनी चाहिए।

मन के ऊपर पर्दा डालना भी ज़रूरी होता है शायद! पर्दा सिर्फ ओट ही नहीं करता, वह अपनी पृष्ठभूमि में चमकाता भी है, यह तो प्रद्योत नहीं जानता। जीवन-विधाता की इसी कृपा के लिए वह कृतज्ञ है। रहस्य के सागर से घिरे आयु के टापू का वास्तविक मूल्य, सच्ची सार्थकता को उसने समझा है। स्वप्न और सत्य की मिलावट से एक नश्वर महल

बनाने का अधिकार, जीवन के अनोखे क्षणों को उपभोग करने का सौभाग्य —इसीकी क्या तुलना हो सकती है।

अब निश्चिंत विश्राम की बारी। औरतें रसोई में जा चुकी होतीं। बच्चे अपने खेल में मस्त। चटाई पर एक तरफ बैठा प्रद्योत सामने के स्निग्ध शीतल अन्धकार को देखने लगता। तारों भरे आकाश में अनूठी शांति और स्तब्धता, अनिर्वचनीय प्रशांति उसके मन में। मधुरता से भर गया होता मन उसका। मूक गांव का मीठा आलस छा गया होता सर्वांग में।

विस्मृति का गाढ़ा काला पर्दा क्या रुपहले धागे के जाल से ढक गया। ओरछोरहीन समुंदर का सूना और उजड़ा टापू क्या जीवन के स्पर्श से हरा-भरा हो उठा, कोलाहल से मुखर ?

ऐसा ही तो लगता।

१०

दरवाक के एक टूटे-फूटे कच्चे घर की सूरत इतनी बदल गई कि यकीन नहीं ग्राता देखकर।

प्रद्योत को छुट्टी नहीं के बराबर ही मिलती। हफ्ते में एक दिन से ज्यादा वह गांव जा नहीं पाता। लेकिन उसी थोड़े-से समय में उसने उस जीर्ण घर का काफी संस्कार कर लिया।

उसके उत्साह का ग्रन्त नहीं। विमल ग्रौर कमल भी उससे टक्कर नहीं ले पाते। यह घर ग्रौर यह छोटा-सा परिवार ही उसकी सृष्टि का क्षेत्र था। वह नए सिरे से इसीकी रचना करना चाहता।

सनीचर की रात ग्राराम करते कट जाती। इतवार को सुबह होते न होते प्रद्योत का काम शुरू हो जाता। टूटी दीवारों की मरम्मत! मिस्त्री की क्या जरूरत। वह ग्राप कर लेगा। विमल-कमल सामान जुटा देने को हैं ही।

विमल-कमल पोखरे के किनारे से मिट्टी ले ग्राए। करनी ग्रौर फीता प्रद्योत कलकत्ते से ले ही ग्राया था। गांगुली के पुराने भट्टे पर से नाम का दाम देकर कुछ ईंटों का इंतज़ाम कर ही लिया गया था। बला से दीवाल खड़ा करना नहीं ग्राता। गिलावे के सहारे ग्राड़ी-टेढ़ी दीवाल बना ली।

कमल धागे में लट्टू झुलाकर बोला—लाल भैया, इससे देख लो, दीवाल सीधी हो रही है कि नहीं।

प्रद्योत ने हंसकर कहा—ग्ररे, यह क्या है?

समझदार की तरह कमल ने कहा—नहीं जानते। मिस्त्री तो इसीसे दीवाल को सीधा करते हैं। झुलाकर देखो भी तो !

दीवाल की बनावट के बारे में प्रद्योत को कोई गलत धारणा न थी। उसने झट कहा—धत्, हम दीवाल को सीधा थोड़े ही कर रहे हैं !

कमल-विमल अवाक्-से रह जाते। पूछते—सीधी नहीं करेंगे ?

प्रद्योत ने गंभीर होकर बेपरवाह-सा कहा—बाहर की दीवाल को ऊबड़-खाबड़ ही बनाना चाहिए। चोर उसपर चढ़ नहीं सकेंगे। हाथ-पांव छिल जाएंगे।

बात के महत्त्व को समझकर विमल बोला—अच्छा !

निर्मला भी खड़ी-खड़ी देख रही थी। वह हंस पड़ी। नाराज़-से होकर कमल-विमल ने कहा—हंस क्यों पड़ी ?

—तुम्हारी बेवकूफी पर।

—क्यों, बेवकूफी कैसी ?

—और क्या ! बतंगड़ बना दिया और तुमने यकीन कर लिया।

संदेह से कमल-विमल ने लाल भैया और छोटी जीजी की तरफ ताका। प्रद्योत ने कहा—अरे भई, तुम यह सब सुनते क्यों हो, मर्द-बच्चे भी बेवकूफ होते हैं कहीं ?

कमल भी यही समझता था। उसके चेहरे पर फिर से हंसी झलकी। जाते-जाते निर्मला खीझ भरे स्वर में कहती गई—अहा-हा, बेवकूफ क्यों होने लगे भला ! दीवाल बनाने में ही अकल का पता चल गया।

करनी से ईंट बैठाते हुए प्रद्योत ने जवाब दिया—कौन बेवकूफ है, कौन नहीं, यह चोर आने पर ही समझा जाएगा, क्यों कमल ?

कमल ने हुंकारी भरी। फिर कौतूहल से पूछा—चोर आखिर आएगा तो लाल भैया ?

गंभीर होकर प्रद्योत ने कहा—नहीं आएगा भला ! ऐसी दीवाल का लोभ कै तक संभालेगा।

कमल इसी जवाब से निश्चिंत होकर जा रहा था कि अचानक सब की खिलखिलाहट से वह विह्वल हो उठा और इस संदेह से कि इसमें उसकी हंसी उड़ाने की साज़िश है, वह बहुत नाराज़ होकर वहां से चला गया।

केवल दीवाल की मरम्मत ही नहीं, इस बीच प्रद्योत ने और भी बहुत कुछ किया।

आंगन में अनार के पेड़ के आसपास बहुत-से पौधे लग गए थे। बाहर बहुत-सी जगह अब तक झाड़-झंखाड़ से भरी थी। एक दिन प्रद्योत उसकी सफाई में लग गया। कमल-विमल को सफाई से एतराज़ नहीं था, लेकिन लाल भैया ने इसपर रहस्य का पर्दा डालकर बड़ा अन्याय किया। लेकिन वहां पर होगा क्या, यह न जानने से उनकी बेचैनी की हद न थी।

कमल को चुपचाप बुलाकर विमल ने कहा—जानता है यहां क्या होगा ?

गहरे कौतूहल से अपनी बड़ी-बड़ी आंखें फाड़कर कमल ने पूछा—क्या ?

इतनी देर में अपनी कल्पना को दूर तक फैलाकर विमल ने मनचाही एक चीज़ पाई। उसने धीरे से कहा—मन्दिर बनेगा। गुसाइंयों का जैसा मंदिर है, वैसा ही।

कमल के अचरज और आनन्द की सीमा न रही। भैया की बात पर अविश्वास करने को कुछ न था, फिर भी उसने ज़रा संदेह ज़ाहिर किया—उतना बड़ा मंदिर बनेगा ?

—मन्दिर जब बनेगा ही तो पहले से उसे छोटा बनाने में क्या लाभ ?—

विमल ने गम्भीर होकर कहा—उससे भी बड़ा। और शिखर भी कई होंगे।

भैया के मन्दिर की थोड़ी तरक्की करने की कोशिश करते हुए कमल ने कहा—सब सोने के शिखर !

यह सूझ अपने दिमाग की उपज होती, तो जाने विमल क्या कहता लेकिन कमल के प्रस्ताव पर हामी नहीं भर सकता। डांटकर बोला—सोने के शिखर ! सोने के शिखर कैसे होंगे, सुनें जरा ? उतना सोना हम लोगों के है ?

कमल कुछ दब जाने पर भी पस्त नहीं होता। सोने के शिखर हों न हों, एक मन्दिर तो होगा अपना। सो शिखर की मामूली-सी बात पर अभी भैया से झगड़ना ठीक नहीं। उस डपट का ख्याल न करके वह बोला—लेकिन अपने मन्दिर में किसीको घुसने नहीं देंगे भैया !

इसपर विमल की पूरी सहमति थी। भंवें बनाकर बोला—ऊंह, घुसें न लोग !

इसके बाद दोनों भाइयों में कुछ देर के लिए खासा मेल रहा। लाल भैया की मदद करते हुए कनखियों से एक-दूसरे को देखते हुए दोनों हंसते रहे। उन्होंने लाल भैया के छिपे मनसूबे को भांप लिया है, इसमें कोई संदेह नहीं।

लेकिन मां ने आकर असमय में ही इस कल्पना को तोड़ दिया। प्रद्योत जंगल का लगभग सफाया कर चुका था। पसीना-पसीना होकर वह बचे हुए पेड़-पौधों की सफाई में लगा था। मां ने आकर कहा—वेला बहुत हो गई। खाना-पीना है। जंगल की सफाई करके क्या होगा ?

अब रहस्य रखना मुश्किल था। हंसकर प्रद्योत बोला—क्या होगा ! आप देखिए, कैसी सब्ज़ी उगाता हूं।

मां ऐसे ख्यालों की आदी थीं। चुपचाप जरा हंसकर बोलीं—खैर,

अभी तो खाने चलो।

दोनों भाई लेकिन अकड़ बैठे। कहां गगन-चुम्बी मंदिर और कहां साग-सब्ज़ी की क्यारी! दोनों की कल्पना धूल में मिलने को तैयार! कमल ने नाराज़ होकर कहा—धत्, सब्जी की क्यारी क्या? मंदिर नहीं लाल भैया!

प्रद्योत अवाक् होकर बोला—मंदिर! मंदिर कैसे मिला तुझे?

—वाह, छोटे भैया ने तो कहा, गुसाइंयों से बड़ा मंदिर बनेगा!

सब हंस पड़े। प्रद्योत ने उसे दिलासा देते हुए कहा—अरे, मंदिर से तो बगीचा कहीं अच्छा है। सब्ज़ी होगी। तरह-तरह के फल!

कमल किंतु दिलासे से भूलने वाला न था। साग-सब्ज़ी तो बाजार में मिल जाती है। इसके लिए इतनी तकलीफ की क्या ज़रूरत? आखिर तक लाल भैया को मंदिर बनाने का वचन देना ही पड़ा।

प्रद्योत का जीवन भरा-पूरा था। कहीं कोई शंका नहीं रह गई थी। शायद नई मिट्टी का सहारा पाकर अपने मन की जड़ को उसने बड़ी दूर तक फैला दिया था, अपने को हज़ारों शिरा-उपशिरा के बंधन से बांध लिया था।

प्रद्योत को इतना भी सोचने का अवकाश नहीं कि कभी वह इस परिवार के बाहर का आदमी था। इस परिवार ने भी निःसंकोच उसे अपना लिया था। ऐसी सहजता और ऐसी स्वाभाविकता से अपना लिया था कि कृत्रिमता की कोई निशानी भी नजर नहीं आती।

प्रद्योत को अपने नए मेस में चिट्ठी मिली। मां ने निर्मला से लिखवाया था कि विमल बड़ा शरारती हो गया है। तुम्हारे बिना उसे काबू में रखना कठिन है। उसके बाद विमल की नई करतूत का बखान करके लिखवाया था कि किताब तो वह छूता ही नहीं। उसे कलकत्ते ले जाकर लिखाई-पढ़ाई का इंतज़ाम करो, नहीं तो निरा मूर्ख रह जाएगा।

निर्मला के हाथ की लिखावट यहीं खत्म थी। बाकी बातें टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में दीदी को ही किसी तरह लिखनी पड़ी थीं। लगा, किसी भी प्रकार से निर्मला को लिखने के लिए राज़ी नहीं किया जा सका। अवश्य दीदी ने निर्मला के विवाह की ही बात लिखी थी कि प्रद्योत कुछ खोज-पड़ताल तो कर रहा है न? इधर लड़की इस कदर बड़ी होती जा रही है कि ज़्यादा दिन रखने से समाज में बड़ी निंदा होगी।

इसके बाद चिट्ठी में इस-उस चीज़ की मांग, जो लौटते वक्त प्रद्योत से कहना भूल गई थी। उसीकी फहरिश्त! पुरानी लालटेन को उस रोज़ विमल ने तोड़ दिया; एक नई लालटेन हो तो अच्छा हो। कमल के लिए एक जोड़ा धोती निहायत ज़रूरी है। निर्मला के लिए बिनाई का कांटा लाने में भूल न हो वरना उसकी नाराज़गी की हद न होगी, आदि आदि।

ये फरमाइशें बिना किसी हिचक के की गई थीं—सहज अधिकार के नाते। दोनों तरफ कहीं कोई दुविधा न थी। और इसीलिए प्रद्योत इस आसानी से अपने को इस नए जीवन से मिला सका था।

प्रद्योत को इन दिनों काम बहुत था। एक नई ट्यूशन कर ली थी। पैसा बचाने के लिए नए मेस में आ गया था। यहां खर्च कम पड़ता था। दरबाक में अभाव बहुत था। लिहाजा आमदनी उसे बढ़ानी ही थी। अभी तक कोई उपाय बेशक नहीं निकला, लेकिन उसकी कोशिशों का अंत नहीं था। उसके मन में दुःसाध्य साधन की धुन सवार हो गई थी। इस परिवार को केन्द्र बनाकर कभी-कभी वह आकाश-कुसुम की भी कल्पना करता। किसी कारोबार से कभी न कभी धनी भी तो बन सकता है वह। फिर तो क्या नहीं कर सकता। मन ही मन दरबाक में पक्के मकान की भी सोच लेता। और भी बहुत कुछ का सपना देखता। चूंकि पैसे नहीं हैं, इसीलिए वह निर्मला के लिए अच्छा संबंध ठीक

नहीं कर पा रहा है। जहां-तहां तो उसका ब्याह नहीं किया जा सकता।

प्रद्योत को अब भविष्यत् की ही फिक्र पड़ी थी। बीते दिनों की विस्मृति अब शायद पीड़ा नहीं देती। लेकिन बात तो ऐसी नहीं। बहुत रात गए कभी-कभी वह उनींदा-सा कमरे में चहलकदमी करता रहता। अतीत की विस्मृति अब एक नए रूप में उसके आगे विभीषिका बनकर खड़ी हो गई थी। कभी इस काले पर्दे को हटा न सकने की उसे निराशा हुई थी, आज भय हो रहा था, कहीं वह पर्दा अचानक हट न जाए। हृदय से वह प्रार्थना करता कि यह पर्दा हट न जाए।

जाने इस पर्दे के पीछे क्या है? कौतूहल तो इसका कम था, आशंका अधिक थी। वह पुराना जीवन यहां की सारी जड़ें उखाड़कर उसे खींच लेगा, यह सोचते ही वह सिहर उठता। भला हो या बुरा, जब ढक ही गया है तो वह जीवन फिर उघर न जाए—उसकी अब यही एकान्त कामना थी।

राह में कोई टोकता तो आजकल वह चौंक उठता। जाने उसके अतीत का कोई प्रतिनिधि तो नहीं प्रकट हुआ। अपने को वह नए जीवन की ही चिंता में डुबाए रखता, किसी क्षण कहीं मन के किसी छेद से उसका पुराना जीवन न झांक उठे। इस दिन भी शनिवार था। हवा में सर्दी की खुनकी। आसमान में आसन्न जाड़े की अनोखी धूसरता। बरामदे में चटाई पर बैठा प्रद्योत विमल के हफ्ते भर की पढ़ाई का लेखा ले रहा था। इतने में मां आकर एक ओर बैठ गई।

मां का स्वास्थ्य कुछ दिनों से बड़ा खराब रह रहा था। घर से विशेष निकल नहीं सकती थीं।

इसीलिए कुंठित होकर प्रद्योत ने कहा—आप क्यों बाहर निकल आईं मां, मैं तो आ ही रहा था।

—दिन-रात तो कमरे में ही पड़ी रहती हूं। कभी-कभी निकले

बिना हांफ-सी उठती हूं।

लेकिन उनके बाहर आने का कारण और ही था। ज़रा ही देर में वह प्रकट हो गया। इस-उस बात के बाद ही उन्होंने असली बात छेड़ दी—सरकार के यहां से फिर आदमी आया था।

इतना ही कहकर मां चुप हो गईं। उसके बाद उत्सुकता से प्रद्योत की तरफ कुछ क्षण ताककर बोलीं—बेहद परेशान कर रहे हैं वे लोग।

प्रद्योत हंसकर बोला—इसीका तो डर है मां। लड़के वालों का ऐसा झुकाव ठीक नहीं।

ये बातें बहुत बार हो चुकी थीं। गांव के ही एक घर से निर्मला के विवाह का प्रस्ताव आया था। लेन-देन ज्यादा नहीं। लड़की पसन्द आ गई थी। इसलिए असुविधा कुछ न थी। मगर लड़का चूंकि निकम्मा था, इसलिए प्रद्योत हर्गिज राज़ी न हुआ।

पहले मां की भी राय नहीं थी। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे, लड़की के विवाह की चिन्ता भी उतनी ही बढ़ रही थी। रुपयों का जोड़ न था, सो अच्छे पात्र के लिए वे धीरे-धीरे निराश होती जा रही थीं। सो आज उन्होंने कुछ दृढ़ता के साथ कहा—आखिर अच्छे वर के लिए बैठे कब तक रहें बेटे! लड़की की उमर तो बढ़ती ही जा रही है। फिर अपनी अवस्था जैसी है, उसमें इससे अच्छा घर-वर मिलेगा भी क्या!

प्रद्योत चुप रहा। लड़के को वह अपनी आंखों देख चुका था, खोज-पूछ भी की थी। जान-सुनकर ऐसे एक निकम्मे के हाथों निर्मला को सौंपने का मन गवाही नहीं देता। यह तो उसीकी हार है। नए जीवन की पहली ही दुरूह बाधा के आगे वह कैसे हार मान ले!

मां फिर बोलीं—मेरी तो अब नकारने की हिम्मत नहीं होती बेटे! बाद में शायद नसीब में यह भी न जुटे!

प्रद्योत कुछ कहे, इसके पहले ही मां बोलीं—कल वे लोग फिर आएंगे। मैंने कहा है, अब बात दे दूंगी।

ज़रा देर चुप रहकर प्रद्योत बोला—खैर, वही करेंगे।

उसके बाद बड़ी देर तक वह बरामदे में चुप बैठा रहा। लाल भैया की तरफ से लिखाई-पढ़ाई के बारे में और कोई सवाल होते न देख विमल चुपचाप वहां से चल दिया। सांझ का धुंधलका धीरे-धीरे गाढ़ा होकर रात के अंधेरे से मिल गया। आंगन के पास तुलसी-चौरे पर कब दीदी या निर्मला दिया जला गई, कौन जाने। मां भी कब की चली गई। सिर्फ प्रद्योत ही निर्जीव-सा था। मामूली-सी सम्मति देने में इतनी व्यथा थी, किसे पता था!

रात को एक अजीब घटना घटी। प्रद्योत को कम से कम अपने सचेतन मन से दूर दिगंत में भी इसका आभास न मिला था। खा-पीकर वह कमरे में घुस रहा था। निर्मला बिछौना बिछाकर मच्छरदानी लगा रही थी। चौखट पर खड़ा होकर हंसते हुए प्रद्योत ने कहा—अब इतने जतन से मसहरी लगाने की ज़रूरत नहीं। दो दिन के बाद तो खुद ही लगानी पड़ेगी। अभी से ही आदत लगा लूं।

निर्मला ने जवाब नहीं दिया। उसके व्यवहार से यह आभास भी न मिला कि उसने यह बात भी सुनी। वह मसहरी लगाने में मशगूल थी।

—उफ, शुभ समाचार से ही मिजाज चढ़ गया है। अभी से ही बोली नदारद। दो दिन बाद तो पहचान भी न पाओगी शायद।

अब की निर्मला ने गर्दन घुमाई। तूफान आने वाले आसमान जैसे रुद्ध आवेग से उसका चेहरा थम्-थम् कर रहा था।

प्रद्योत को ऐसी शकल देखने की उम्मीद न थी। पहले तो वह स्तंभित-सा हो गया। फिर अपने को संभालकर परिहास की चेष्टा करता

हुआ बोला—मैंने ताड़ का पत्ता दिया था, इसीलिए शायद नाराज़गी है। मैं····

बात खत्म करने का मौका न मिला। अचानक निर्मला घायल चिड़िया-सी बिस्तर पर लोट पड़ी। रोने के प्रबल आवेग को रोकने की चेष्टा में उसकी लुटी हुई देह कांपने लगी। प्रद्योत बिल्कुल विमूढ़ बन गया। क्या करे, कुछ सोच न सका। देर तक काठ का मारा-सा खड़ा रहकर दृढ़ कंठ से पुकारा—निर्मला!

निर्मला इसपर भी चुप।

कातर होकर प्रद्योत ने कहा—निर्मला, मुझे बताओ, क्या हुआ है।

निर्मला का नीरव रोदन तो भी न रुका, कोई जवाब भी न मिला।

प्रद्योत बेचैन-सा हो रहा था। दुखते स्वर में बोला—छिः, कर क्या रही हो निर्मला। कोई देख ले तो क्या कहेगा?

निर्मला अब उठ बैठी। गर्दन झुकाए थी, मगर दोनों गालों से बहते हुए आंसू छिपे न रह सके। आखिर प्रद्योत अन्धा तो नहीं। धीमे से पूछा—इस ब्याह में तुम्हारी राय नहीं है? शर्म न करो, बताओ।

—मालूम नहीं।—कहकर अचानक उमड़ती हुई रुलाई से फफककर वह तेज़ी से बाहर निकल गई।

प्रद्योत सन्न-सा रह गया। लेकिन विमूढ़ता न रही, निर्मला की मौन रुलाई के ज्वार की चोट से उसके अवचेतन मन का बहुत कुछ तिर उठा।

निर्मला की इस अप्रत्याशित रुलाई का कारण वह जानता है, अपने मन की गोपनतम अनुभूति भी अब उसकी अजानी नहीं।

११

वह रात प्रद्योत की जागते कटी।

अपने-आपको इस तरह पहचान पाने से जितना उसे अचरज नहीं हुआ, उससे कहीं ज्यादा हुई ऊब। लगा, उसकी इतने दिनों की निर्मल साधना कैसे कलंकित हो गई। उसके आनन्द की सृष्टि पर स्वार्थ की छाया पड़ गई है।

इस घर में उसे जगह मिली है, यह सत्य है, लेकिन उससे भी बड़ा सत्य यह है कि उसने अमल बाबू के परिवार को नये सिरे से गढ़ना चाहा है। उसका विश्वास है, उस सृष्टि में कोई संकरा उद्देश्य नहीं था। आज निर्मला की रुलाई ने एकाएक उसकी इस भूल को निष्ठुरता से तोड़ दिया। उसकी सारी स्वार्थहीन प्रचेष्टाओं में ऐसी एक कामना थी, यह सोचकर वह संकुचित हो उठा। इसीलिए अपने-आप पर खीझ से वह इस गोपन कामना को गहरी साजिश समझकर अपने को धिक्कारने लगा।

उसे बार-बार ऐसा लगने लगा कि ऐसा न होता तो ठीक था। अहैतुक जीवन-विलास के आनंद से उसने इस परिवार की मदद करना चाहा था। इन लोगों ने उसे अपनाने में कोई दुविधा न की, इसका एहसान तो था ही, उस एहसान का कर्ज चुकाकर ही वह छुट्टी नहीं पा गया, उससे भी कुछ अधिक करना चाहा। उसी अतिरिक्त अहैतुक आत्म-दान में ही उसके अन्तर की गहरी तृप्ति थी, गौरव था।

वह समझ गया, अब से उस निर्मल आत्मप्रसाद की प्रशांति का रहना संभव नहीं है। लमहे में हर कुछ का रंग बदल गया। शायद उसके

जीवन में नया सुर जागा और शायद क्यों, उसके जीवन में सचमुच ही एक नया विस्मय उद्‌घाटित हुआ है। इसे अस्वीकार करने से कोई लाभ नहीं, लेकिन फिर भी उसे चैन न थी। जो आनंद उसके हृदय में गुंजन कर रहा था, वह उसीके लिए लज्जित था। उसने अपने को यों ही लुटाना चाहा था, लाभ के लोभ से नहीं। इसीलिए अप्रत्याशित आनंद की कीमत पाकर वह संकुचित-सा हो उठा। इसे अस्वीकार न कर पाने से ही वह बड़ा छोटा हो जाएगा।

यह आत्मग्लानि लेकिन टिकाऊ नहीं हुई। धीरे-धीरे मन में संदेह जगा। यह प्रेम शायद शर्मनाक हो, लेकिन इस आनंद को वह स्वीकार कैसे न करे? और सच ही क्या यह ऐसी शर्मनाक बात है? अपने आत्म-प्रसाद की प्रशांति से इस आनंद को तुच्छ समझने का कारण क्या हो सकता है? चाहे जैसे, जिस भी राह से जाए, इस प्रेम को बाधा भी नहीं दी जा सकती। उसे लगा, उसकी सत्ता की अगम गहराई की शाखा-प्रशाखा में इस आनंद की धारा संचारित हो गई है। ताज्जुब यही है कि वह अब तक सचेतन क्यों नहीं हुआ। और सचेतन क्या वह सच ही नहीं रहा! कौन जाने! शायद हो कि यह भी उसकी आत्मप्रवंचना हो, खुद के आगे पकड़ाई न देना चाहता हो। कदाचित् कहीं महत्त्व की दुर्बलता का मोह था—आत्मप्रसाद क्षुण्ण न हो, इस डर से खुद को ही उसने खुद से छिपाया। आधी रात को वह कमरे से बाहर निकलकर बरामदे पर आ खड़ा हुआ। घना और शीतल अंधकार। नए चमकाए जवाहरात-से सिर्फ तारे झकमका रहे थे। धरती खो गई थी, था सिर्फ ज्योतिकणों से सींचा हुआ आकाश। चुपचाप ज़रा देर खड़ा रहते-रहते क्या हो गया, कौन जाने। दिन-रात की दुई का अर्थ मानो उसे नए सिरे से उपलब्ध हुआ—नए तौर से मालूम हुई रात की व्याख्या।

पृथ्वी, यह दिन वाली पृथ्वी, यही सब नहीं। अपने-आपको भूलना

नहीं चाहिए, भूलना नहीं चाहिए ज्योतिर्बिंदु की असीमता के इशारे को। लेकिन मनुष्य भूलता है, वह निकट के नशे में चूर रहता है, सृष्टि के अधूरे अर्थ में ही भूला रहता है।

उसके बाद आती है रात। वह सृष्टि के अर्थ को असीमता तक फैला देती है, जीवन की अनंत पृष्ठभूमि को प्रकाशित कर उसके गूढ़तम रहस्य को प्रकट किए देती है। प्रद्योत ने अपने में इस अंधेरे आकाश का अनुभव किया—अनगिन ज्योतिर्बिंदु से सिंचित आकाश स्पंदित हो रहा था। उस आकाश के इशारे से, गहरे और रहस्यमय इशारे से उसका जीवन नई व्यंजना से दीप्त हो उठा था।

यह आकाश उद्घाटित कैसे हुआ, उसकी सत्ता के गुप्त केंद्र का यह आकाश! अपने नये जीवन में प्रद्योत मानो आज तक दिन की पृथ्वी में ही जगा था, आज एकाएक रात आई। असीम रहस्य का दूर तक फैला हुआ इशारा लेकर। यह रात क्या सिर्फ उस लड़की के अश्रु-प्रवाह से बह निकली, उसकी सत्ता के रहस्य-केन्द्र से!

कुछ क्षण खड़े होकर, बाहर-भीतर के इस आकाश के फैलाव का अनुभव करते-करते उसके जी में आया, नाहक ही वह खुद से बेकार का द्वंद्व करके घायल होता रहा। उसके आत्मप्रसाद का मूल्य क्या है? उसके जीवन का सब से बड़ा सत्य आज यह रात का आकाश है, जो आकाश कि अब तक उसके जीवन की ओट में रहा। आज उस आकाश का आविष्कार करके वह धन्य हुआ, उसके लिए इससे बड़ी सार्थकता और कुछ नहीं हो सकती। उसकी आत्मा आज मानो इन दो आकाशों के महासंगम में नई चेतना से स्पंदित हो रही थी—तुच्छ आत्मप्रसाद के मोह से क्या वह इस चेतना को अस्वीकार करे?

नः, उसे फिर नये सिरे से जीवन के आमने-सामने आना होगा। जीवन में दुःसाहस की भी जरूरत है—अपने को वास्तविक रूप से प्राप्त

करने का दु:साहस। हो सकता है, पुराने प्रत्ययों की जड़ में चोट लगे, हो सकता है, अशांति आए—फिर भी अभी-अभी का आविष्कृत आकाश तो भुला नहीं रहा—जो आकाश कि नीहारिका की संभावना से कांप रहा है। इस प्रेम को वह स्वीकार करेगा, जो दैनंदिन जीवन की संकरी सीमा को तोड़कर अंतहीन आकाश की उपलब्धि लाया है, जिसने जीवन के अर्थ को सृष्टि के गूढ़ रहस्य तक प्रसारित कर दिया है। विस्मृति के पर्दे के पार उसने नया जीवन पाया है, सिर्फ शांति के लोभ से, अर्धसभ्य से चुकता कर इसे व्यर्थ क्यों करे ?

लेकिन बाधा बहुत थी। आदमी आकाश को ओट में रखकर दिन की पृथ्वी की संकीर्ण सीमा में वास करता है। उनके परिचय का विनिमय दिन के प्रकाश में ही होता है, जीवन के तौर-तरीके उसने दिन की रोशनी में ही बनाए हैं। रात के आकाश से उसके जीवन का संबंध नहीं। इसीलिए प्रद्योत की गंभीरतम अनुभूति इस दुनिया के लिए निरर्थक है। दिन की रोशनी में रात का संबंध खुद उसीकी निगाहों में कैसा अशोभन लगता है, कैसा कुत्सित लगता है। मन की सारी आदतें राह रोककर खड़ी हो जाती हैं।

रात को उसकी उपलब्धि आग की लौ-सी नग्न और प्रदीप्त थी। दिन के आलोक में वह मलिन हो गई। सोचने की कितनी ही तो बातें थीं। रात के आसमान के नीचे निर्मला नारी मात्र की प्रतीक थी, उसके अस्तित्व के रहस्य का आईना, जिस आईने में अपने को आश्चर्यजनक रूप से आविष्कार करने का अभियान वह करना चाह रहा था। और दिन के प्रकाश में निर्मला इस परिवार की एक पंद्रह साल की कुमारी कन्या भर लगती। उसकी अपनी दुनिया है, उस दुनिया के अनेक संस्कार, अनेक रीति-नीति हैं; सब पर समाज का अनुशासन है।

निर्मला की कामना वह कैसे कर सकता है ? एक सामाजिक आदमी

के नाते उसका स्थान कहां है, वह कुछ भी नहीं जानता। झूठ की शरण गहे बिना सामाजिक रीति को अंगूठा दिखाने का कोई उपाय नहीं। यह कैसे बने उससे? इसके सिवाय स्वाभाविक संकोच भी है। खुद से वह यह बात चला कैसे सकता है? और सारा संकोच छोड़कर बात चलाएं भी तो रहने क्यों लगी?

सवेरे औरों के जगाने से पहले ही प्रद्योत घर से बाहर निकल पड़ा था। गांव पर घना कुहरा छाया था। कुहरे के उस आवरण में गांव कैसा परिव्यक्त, मृत मालूम हो रहा था। मानो वहां कोई आदमी नहीं, अशरीरी छाया अपने पुराने विचरण-क्षेत्र में रह गई थी।

उसे निजत्व कैसा अशरीरी-सा लगा। कुहरे से गांव की तरह उसकी भी वास्तविक सत्ता मानो गलकर अस्पष्ट हो उठी थी। रह गई थी सिर्फ छाया। यह छाया जीवन की विकृत नकल करती हुई चल रही थी। बस। सच्चे जीवन के आश्रय के लिए उसकी बेचैनी की हद न थी, लेकिन लाचार।

गांव के विभिन्न रास्तों से वह देर तक घूमता रहा। बेला बढ़ने पर कुहरा तो जाता रहा, पर उसकी चंचलता न गई।

रविवार का दिन। उसे मालूम था, कमल–विमल उसे खोजकर हैरान हो रहे होंगे। बहुत-से काम करने की बात थी। बाहर थोड़ी-सी जगह में प्रद्योत ने गोबियां लगाई थीं। पौधे ठीक से बढ़ नहीं रहे थे। ज़मीन को ठीक करना था। अंदर कद्दू की लता फैल रही थी; मचान बनाया था।

लेकिन उसे किसी काम का उत्साह नहीं मिल रहा था। उसके मन की वह प्रशांति कहां। उसने खूब समझा कि अपने से कोई समझौता किए बिना नये जीवन में अब शांति नहीं मिलने की। ज़िन्दगी के आगे जो मसला आ खड़ा हुआ है, जल्दी से जल्दी उसको हल करना ही होगा।

टालने से कोई लाभ नहीं। कल और आज के बीच जो विराट् व्यवधान बन गया है, उसे अस्वीकार करने से ही वह भूठ नहीं हो सकता। पिछले दिनों की वह निश्चित शांति अब सचमुच ही नहीं रह गई। बीती रात को भुलाकर निश्चित मन से सिर्फ इस परिवार की सहायता में अपने को लगाकर अब वह तृप्त नहीं हो सकता। अपने को महानुभवता के मोह में आच्छन्न करके भी नहीं। अपने को अब वह इतना बड़ा धोखा देना नहीं चाहता।

काफी देर करके वह घर लौटा। कमल-विमल लाल भैया के ऐसे रहस्यमय ढंग से गायब हो जाने के कारण पहले तो अवाक् हो गए थे, अब रूठ बैठे।

विमल ने रूठना कायम रक्खा, लेकिन रूठने की बात लाल भैया को जानने न देना कमल को समीचीन न लगा। तुरत नहाकर आया था। गीले अस्त-व्यस्त बालों में मांग फाड़ने की चेष्टा करते हुए लाल भैया को सुना-सुनाकर उसने कहा—बड़ी दीदी, आज मैं अलग खाऊंगा। किसीके साथ मत देना।

बड़ी दीदी रसोई के बरामदे में पीढ़ा डाल रही थी, कुछ समझे बिना ही बोली—क्यों, छोटे भैया का क्या हुआ? उसकी थाली का क्या करूं फिर?

बड़ी दीदी की अकल की कमी से ज़रा खीझकर कमल ने कहा—मैंने छोटे भैया की थाली लगाने को मना थोड़े ही किया है। कह रहा हूं, मैं किसीके साथ न खाऊंगा।

इतने में आंगन में प्रद्योत को देखकर बात बड़ी दीदी की समझ में आई। हंसकर बोली—ओ, तो यह बात है। ठीक ही तो, तुम्हारा खासा

अन्याय है प्रद्योत ! सवेरे से बेचारे मजूरे इंतज़ार में बैठे रहे और तुम बिना कहे-सुने कहां चले गए। गए थे तो अब उसकी सज़ा भोगो। कमल आज तुम्हारे साथ नहीं खाएगा। देखती हूं तुम्हारा पेट कैसे भरता है आज !

विमल लेकिन अपनी ऐसी गहरी शिकायत को मामूली मज़ाक में हलका होने देने को तैयार न था। फिर मजूरे बैठे रहे, यह बात अपमान-जनक-सी लगी। अब तक वह चुप था, अब सहसा सूने आसमान को संबोधन करके बोल उठा—हम लोग अपने से एक बगीचा लगा रहे हैं।

फिर कमल को भी साथ करने की नीयत से बोला—बड़ी अच्छी-सी जगह देख आया हूं। है न कमल ?

कमल भैया का दांव-पेच न समझ सका। बोला—कहां ? विमल ने बिगड़कर मुंह चिढ़ाते हुए कहा—कहां ! बेवकूफ कहीं का !—बड़ी दीदी हंस पड़ी। प्रद्योत ने भी हंसी में साथ देना चाहा लेकिन सकुचाया-सा। आज संबन्ध में वह इस परिवार से किसी भी प्रकार सहज नहीं हो पा रहा था। रोज़मर्रे की बातों में स्वाभाविक तौर से साथ देने की शक्ति मानो उसमें न थी जो कि ऐसे ही हास-परिहास और आनन्द से ही अब तक पूरी तरह तृप्त था। एक दिन में कैसे खुद ही उसने अपने को दूर कर लिया—सोचकर अचरज हुआ।

एक ज़रूरी काम का बहाना बनाकर अचानक तीसरे पहर प्रद्योत कलकत्ते चल दिया। घर से स्टेशन पहुंचने तक सारी चिंताओं को उसने बलपूर्वक दूर ही रक्खा; लेकिन गाड़ी पर सवार हो जाने के बाद सत्य को अपने से छिपाया न जा सका। वह भाग रहा है। सच ही कायर की नाईं जीवन के नए सत्य के सामने खड़े होने की, जीवन में उसके मूल्य को स्वीकार करने की क्षमता उसे नहीं। इसलिए वह किनाराकशी कर रहा है।

कलकत्ता जाने वाली इतवार की शाम की गाड़ी । मुसाफिर नहीं के बराबर । एक डिब्बे में वह अकेला ही था । गाड़ी खुल जाने के बाद तेजी से भागते हुए धुमैले प्रांतर और गांव की ओर ताकते हुए उसका मन गहरी हताशा से भर गया । केवल मैदान और गांव ही नहीं, उसे लगा, उसके नए जीवन का सारा संचय, सब आश्रय उससे दूर खिसकता जा रहा है । और ये सब खिसक रहे हैं, उसकी कमज़ोरी से, इसलिए कि वह उन्हें पकड़कर रख नहीं सका, पकड़कर रखने की उसे हिम्मत नहीं है इसलिए । जो भी हो, उसकी निरुद्देश्य यात्रा फिर शुरू हुई, इसमें संदेह नहीं ।

मगर जाए कहां वह ! अंधेरे दिगंत में कोई राह ही तो वह नहीं देख पाता । कौन निर्दय देवता उसके जीवन का सूत्र बन रहा है, कौन जाने ! कौन समझे, उसकी नीयत क्या है । साधारण कोई रास्ता उसके लिए नहीं । सहज रूप में शांति के उपभोग का उसे अधिकार नहीं । हर आदमी का देवता भी शायद अलग होता है । कम से कम जिस देवता ने उसके जीवन की ज़िम्मेदारी ली है, उसके चेहरे पर तो अभय की उज्ज्वल ज्योति नहीं । जिस अंधकार ने असीम आकाश के नक्षत्र लोक में व्यवधान की सृष्टि की है, उस देवता का आसन शायद उसी अंधकार में है, उसकी नीयत दुर्बोध है, पथ अज्ञेय । अपने ख्याल से उसने उसके जीवन में काली यवनिका खींची है । उस यवनिका को उसने हटाना चाहा था, नए जीवन में रुपहले जाल बुनकर उस अंधेरे को ढकना चाहा था, लेकिन फिर अपने बेरहम हाथों से उसने उसे फाड़ डाला, उलझन डालकर सब बेकार कर दिया ।

बाहर अंधेरा घना होता आ रहा था । अंदर की रोशनी साफ झलकने लगी । यह एकांत डिब्बा उसके मन-सा ही मानो एक अलग जगत् होता जा रहा था । जानी-चीन्ही दुनिया अंधकार में डूब गई । रह गया

भयावना सूनापन।

कल की बात को फिर एक बार उसने मन ही मन दुहराया। यह ठीक है कि वह डरपोक की तरह भाग आया है, दिन और रात की गहरी उपलब्धि का सम्मान वह नहीं कर सका, यह भी मालूम है, लेकिन चारा क्या था ?

अपने मन का यह परिचय पाने के बाद खुद से गुंडई करके अब इस परिवार से नाता रखना मुमकिन न था। ऐसा करने से न केवल वह अपने को दुःखित करता, बल्कि एक लड़की के जीवन पर भी नाहक ही वेदना का बोझा बढ़ा देता।

इससे अच्छा है कि निर्मला भूल जाए। अपने को हटाकर वह यही मौका देना चाहता है। जहां किसीके सार्थक होने की गुंजाइश नहीं, वहां भूलना ही अच्छा। अवश्य उसके मन ने बागी होकर कहा है—क्यों, सार्थक होने की गुंजाइश क्यों नहीं है ? लेकिन अपने अंतस्तल की गहराई में उसने अनुभव किया है कि झूठ के सहारे कोई वास्तविक सार्थकता नहीं मिल सकती। यह झूठ कभी प्रकाश में चाहे न आए, लेकिन उसके मन में ही गोपन रहकर सारे जीवन को विषाक्त बना देगा।

नः, उससे यही अच्छा है। वह अपने को ही निर्वासित करेगा। इस निर्वासन की पीड़ा कितनी गहरी है, इसकी अवश्य वह खुद भी थाह नहीं पा सका है। जीवन की प्रचंड प्यास लेकर उसने जो कुछ भी बनाया है, जो भी आश्रय लिया है, सब कुछ को छोड़ना पड़ेगा। उसके चारों तरफ असीम सूनापन। जिस दिन पहले-पहल उसने ट्रेन के एक ऐसे ही डब्बे में अपने को आविष्कृत किया था, उस दिन भी उसकी दुनिया ऐसी ही सूनी थी। लेकिन यह सूनापन उससे डरावना, उससे भी असहनीय है।

उस रोज़ तो दूर दिगंत में कोई तट-रेखा नहीं थी। आज वह खुद प्रिय और परिचित दुनिया को त्याग कर अपने को अथाह में डाल रहा

है। पीछे का आकर्षण सख्त है, मगर अब वह लौटने का नहीं। उसके लिए है केवल तटहीन सागर और अंतहीन अंधकार। फिर भी वही अच्छा है। सारी पीड़ा वह अकेले ही ढोए और किसीके जीवन में कहीं घाव का दाग न हो !

कलकत्ते आकर प्रद्योत ने दूसरे ही दिन मां के पास एक चिट्ठी लिखी। लिखा कि उसे कुछ दिनों तक कलकत्ते ही रहना है। इस बीच वह दरवाक नहीं आ सकेगा। लेकिन फिक्र न करें, गिरहस्ती का सब इंतज़ाम वह यहीं से करेगा।

प्रद्योत अचानक रविवार को चला गया, मां इससे अवाक् हुई थीं। ऐसा अचानक वह वहां से कभी नहीं गया। और इस मरतबा उसके ढंग से ऐसा लगता, चूंकि बिना गए काम नहीं चल सकता, इसलिए सोमवार को इच्छा न रहते हुए भी जा रहा है। मगर इस बार ऐसी जल्दी क्या पड़ी ? उसके जाने के समय का ढंग भी कैसा अस्वाभाविक लगा। कैसा अनमना-सा था, कैसा शंकित-सा भाव। बुढ़िया की कमज़ोर निगाहों में भी प्रद्योत की चंचलता झलक गई।

लेकिन उस रोज वे महज विस्मित हुई थीं, चिट्ठी पाकर चिंतित हो गईं। इस तरह चले जाने के बाद ऐसी चिट्ठी जाने कैसी संदेहजनक लग रही थी। उन्हें आशंका हुई, मानो अस्वाभाविक कुछ हुआ है। चिट्ठी विमल ले आया था। इतवार की उस त्रुटि के लिए उसने लाल भैया को अभी तक क्षमा तो नहीं ही किया है, ऐसे चले जाने से नाराज भी हुआ है। मगर लाल भैया की चिट्ठी हाथ में पाकर उल्लसित हुए बिना कैसे रहा जाए !

डाकिए के हाथ से चिट्ठी एक प्रकार से छीन ही ली और कुछ देर वह चीखता हुआ घर में घूमता रहा ! खुद पढ़ने की भी इच्छा थी, मगर अंत तक वह हो न सकी। निर्मला ताक में थी। झपट्टा मारकर

उसने चिट्ठी ले ली ।

बेवजह असमय में प्रद्योत की चिट्ठी आई है, सुनकर मां बाहर निकलीं, निर्मला से पूछा—प्रद्योत ने चिट्ठी भेजी है ?

इस बीच निर्मला चिट्ठी का कुछ अंश शायद पढ़ चुकी थी । मां की गोद के पास चिट्ठी को फेंककर बोली—हां, यह रही…

मां ने कहा—मुझे देकर क्या होगा। पढ़, क्या लिखा है। लेकिन निर्मला कुछ न बोली । लाचार बड़ी लड़की को बुलाकर चिट्ठी पढ़ानी पड़ी । चिट्ठी का आशय जानकर वे आश्वस्त न हो सकीं ।

इस बिराने आदमी से उन्हें गहरा स्नेह हो आया था । हुए बिना उपाय क्या था ? उसने उनके मरे हुए लड़के की जगह ले ली थी । सिर्फ जगह क्यों, उससे भी ज़्यादा कुछ । इस गहराई से और इतने सहज भाव से उसने अपने को इस परिवार के साथ जोड़ लिया था कि आज उसके असाधारण आत्मत्याग की बात हर समय याद भी नहीं आती ।

लेकिन प्रद्योत के लिए उनके स्नेह से अधिक कुछ न था, वह शायद कुछ कृतज्ञता थी, कुछ दीनता । वह विधाता के आशीर्वाद की तरह इस परिवार में आया । बच्चों का क्या करेंगे ? जब उन्हें इस चिन्ता का कोई किनारा नहीं मिल रहा था, तभी जाने कहां से आकर उसने उनका सारा भार अपने कन्धों पर उठा लिया । जिस दुनिया की नींव तक डोल रही थी, अपने अलौकिक आत्मत्याग से उसने उसे खड़े रखा । यह सौभाग्य आशा से परे है । कभी-कभी मां को इसपर मानो यकीन नहीं आता । उन्हें आशंका होती कि यह टिकाऊ नहीं होने का । प्रद्योत पर निर्भर करने से ही वे मानो और भी दुर्बल हो गई हैं । ज़िन्दगी भर प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते और हारते-हारते उनमें अपनी शक्ति भी नहीं रह गई थी । अब उसकी सहायता से वंचित होने की चिंता ही उनके लिए सब से अधिक भयावह है । और यही उनकी दीनता है ।

यही दीनता आज शायद कुछ ज़ाहिर हो पड़ी। प्रद्योत की चिट्ठी से वे शंकित हो उठीं और समझ न पाने पर भी उनको लगा कि उन्हीं लोगों से कोई कसूर बन पड़ा है। वे एक-एक से बुलाकर पूछने लगीं कि प्रद्योत कुछ कह गया है या नहीं।

बड़ी लड़की को बुलाकर पूछा—अच्छा, प्रद्योत नाराज़ होकर तो नहीं गया है?

बड़ी दी' ने हंसकर कहा—तुम भी बात····भला नाराज़ क्यों हो? प्रद्योत क्या ऐसा आदमी है!

मां का शुबहा फिर भी न मिटा। बोलीं—तुममें से किसीने कुछ कहा तो नहीं?

अब की बड़ी दी' खीझकर बोली—तुम्हें हो क्या गया है कि जो सोच रही हो। जरूरत पड़ गई, चला गया। इसमें कहा-सुनी और नाराज़गी की बू कैसे मिल रही है?

मां अप्रतिभ-सी हुईं। कहा—यों ही सोचती हूं। अचानक छुट्टी के ही दिन चला गया और फिर लिखा है, आ नहीं सकेगा।

बड़ी दी' को प्रद्योत की ओर से खातिर जमा था। इसीलिए उसके लिए इन बातों का कोई अर्थ नहीं था। बोली—जब उसने लिखा है तो काम ज़रूर होगा।

और बड़ी दी' अपने काम में चली गई।

मां के मन में लेकिन संदेह का कांटा गड़ा ही रहा। अपने मन में बहुत कुछ सोच-विचार के बाद एकाएक उन्होंने प्रद्योत की नाखुशी का आविष्कार किया। उन्हें मालूम था कि मुहल्ले में निर्मला के विवाह पर उसे आपत्ति थी। उन्हें लगा, उस रोज़ इस सम्बन्ध के बारे में उनका अड़ जाना ठीक नहीं हुआ। जब सारी ज़िम्मेदारियां उसीने उठा ली

हैं, तो उसके खिलाफ जाना उचित तो नहीं। शायद प्रद्योत इसीलिए नाराज़ है।

इन बातों को सोच-समझकर वे प्रद्योत को चिट्ठी लिखाने के लिए बेचैन हो उठीं। प्रद्योत की राय है, इस अनुमान से उन्होंने निर्मला के ब्याह की बात दे दी थी, यही एक मुसीबत थी। फिर भी बात वापस लेकर वे वर-पक्ष के द्वेष की शिकार होने तक को तैयार हो गईं। किसी भी कीमत पर प्रद्योत को नाराज़ नहीं किया जा सकता।

खत-किताबत आम तौर से निर्मला ही किया करती। लेकिन आज चीख-पुकार करके भी उसे बिस्तर से उठाया न जा सका। तबीयत खराब है, यह कहकर जो वह खाट पर जा पड़ी थी, सो पड़ी थी। लाचार मां को विमल की ही शरण लेनी पड़ी। और-और अनेक बातों के साथ उन्होंने यही जताने की कोशिश की कि प्रद्योत यह हर्गिज़ न सोचे कि उसकी इच्छा के खिलाफ कोई काम किया जाएगा।

मगर ताज्जुब की बात कि चिट्ठी भेजे एक हफ्ता हो गया, लेकिन प्रद्योत का कोई उत्तर न मिला। आ चाहे न सका, मगर चिट्ठी देकर खोज-खबर क्या नहीं ले सकता था! हुआ क्या उसे?

१२

प्रद्योत के लिए इतने दिनों तक चुप और निरुत्तर रहना सचमुच ही कुछ आश्चर्यजनक था। दरवाक से पहली जो चिट्ठी आई थी, उसका जवाब अवश्य वह कई कारणों से नहीं दे सका। लेकिन बाद के पत्रों का उत्तर उसने जानकर नहीं दिया, ऐसी बात नहीं। उत्तर देने की बात ही उसे याद नहीं। उसका जीवन शायद फिर दोराहे पर आ खड़ा हुआ। यह नहीं कि वह राह ठीक नहीं कर पा रहा था, बल्कि राह के विचार का उसे साहस तक न था। मन में फिर उथल-पुथल शुरू हो गई थी—शुरू हो गया था गहरा द्वन्द्व।

उत्तर में लिखे क्या, यही न समझ पाने के कारण वह चुप था। इस परिवार के जीवन से अपने-आपको वह गायब करना चाह रहा था। चाह रहा था, मगर उसकी वजह तो वह खोलकर लिख नहीं सकता। मां की चिट्ठी में जो बेचैनी और डर साफ झलक रहा था, उसे मिटाने के लिए बना-बनाकर कुछ झूठ लिखने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। सो चुप रहना ही उसे अच्छा प्रतीत हुआ। वह समझ रहा था कि अपने को हटा लेने की खाहिश रहते हुए भी उस परिवार से सारा नाता तोड़ लेना उसके लिए सम्भव नहीं। ऐसा कर बैठे तो कल्याण के बजाए उस परिवार की अशेष क्षति होगी। वे लोग प्रद्योत पर ही निर्भर हैं। अपने को एका-एक खींचकर वह उन्हें मंझधार में नहीं छोड़ सकता। इसीलिए उसने सोच रखा था कि दूर से उनकी मदद में वह कुछ उठा न रखेगा। मगर अब घनिष्ठता नहीं रखेगा। उनके जीवन पर अब अपनी अशुभ छाया वह

नहीं डालेगा। अपने इस संकल्प को उसने अटूट रखना चाहा था। किसी कमज़ोर घड़ी में फिर वह फिसल न पड़े, एकाकीपन का निठुर अभिशाप न सह सकने के कारण फिर किसी दिन वह उनके जीवन से जड़ित न हो जाए, इसीके लिए वह सजग था। उसका जीवन सूना हो गया था। हो सूना। अपने जीवन की क्षति-पूर्ति वह दूसरे किसीके द्वारा नहीं कराना चाहता। अपना अभिशाप वह अकेले ही ढोएगा। इसीलिए उसने चिट्ठी नहीं भेजी। तय किया था कि निहायत ज़रूरी न हो तो किसी तरह का भी सम्बन्ध न रखेगा। इतने दिनों की घनिष्ठता के बाद यह विचित्र दीखेगा, सो दीखे। इससे सब को तकलीफ हो तो हो। भविष्य की भलाई के लिए थोड़ी-सी चोट तो देनी ही पड़ेगी। कुछ दिनों के बाद कदाचित् यह आघात भी न लगे। इस परिवार में वह बहता हुआ पहुंचा था, बहते हुए ही निकल जाएगा। कहीं कोई दाग शायद नहीं रहेगा।

यह विचार सुखद तो नहीं था। रेगिस्तानी आंधी की तरह यह उसके सारे अन्तस् को झुलसा गया, जीवन की सारी आशा-आकांक्षा को निर्मूल कर गया। चारों ओर धू-धू करती मरुभूमि; हरियाली की कभी उम्मीद नहीं। फिर भी वह निष्फल प्रतिवाद नहीं करने का। खुशी-खुशी उसे इसी जीवन को अपनाना पड़ेगा। यही उसका दृढ़ संकल्प था। लेकिन एक अजीब-सी घटना घट गई। घटना थी तो मामूली-सी ही, किन्तु उसी-से उसका मरु-हृदय भी आलोड़ित हो उठा।

आजकल अवकाश में भी प्रद्योत मेस में नहीं रह सकता था। घर का बंधन, लोगों का संग-साथ असह्य लगता उसे। लोगों की दैनंदिन आम चर्चा से भी वह हांफ उठता। इतना ही नहीं, वे बातें उसे कैसी निर्दयता से सुई चुभातीं। जो निर्विकार निर्लिप्तता बड़ी कठिनाई से आती वह तुच्छ बातों की चोट से चूर-चूर हो जाती।

गलती लोगों की न थी। लोग ठहरे साधारण स्वाभाविक लोग।

दीन-दुनिया में डूबे। सहज भाव से ही प्रद्योत से पूछते—क्यों साहब, इस बार भी घर नहीं जाना है! लड़-झगड़कर तो नहीं आए हैं। दो-दो रविवार नागा।

प्रद्योत ज़रा हंसकर जवाब देता—न, आफत है। लड़कों का इम्तहान आ गया, इतवार को भी पढ़ाना पड़ता है। कब जाऊं आखिर!

उसके बगल वाले सज्जन कहते—हद हो गई ज़ुल्म की। इम्तहान है, इसलिए इतवार को भी पढ़ाना पड़ेगा। आखिर मास्टर क्या आदमी नहीं! मैं होता तो इतवार को ऐसी पढ़ाई पढ़ाता कि लड़का हफ्ते भर का पढ़ा-लिखा भूल बैठता!

प्रद्योत हंसकर टाल जाता। और किसी वक्त निकल पड़ता। आज-कल वह इसी तरह बहुत समय बाहर-बाहर काटता। अपने से इसी प्रकार वह भागने की कोशिश करता। बेवजह रास्तों का चक्कर काटा करता। बहुत रात बीते थका-मांदा घर लौटता जिसमें किसीसे भेंट न हो, अपने चंचल मन से भी नहीं।

उस रोज़ इसी तरह रास्ते पर घूम रहा था। सांझ हो आई थी। आसमान की रोशनी मंद हो गई थी। शहर की रोशनी चमक नहीं सकी थी। जाने कैसी एक क्लांति से सारा शहर आच्छन्न था। अचानक एक आदमी से धक्का लग गया। वह आदमी खीझ लिए ही उसकी तरफ देखने लगा था, लेकिन दूसरे ही क्षण उसका चेहरा खिल पड़ा। झप्प से प्रद्योत का हाथ पकड़कर उत्तेजित भाव से बोला—वाह, आप तो अच्छे आदमी हैं।

प्रद्योत तब भी विमूढ़-सा खड़ा था। आदमी बिल्कुल अजाना था। उसकी दुनिया में उसकी कहीं जगह नहीं थी।

उस आदमी ने फिर कहा—कितने दिन हुए आए! कभी भेंट तक नहीं की, यही होता है, काम बना कि सब खत्म।

प्रद्योत फिर भी कोई जवाब न दे सका। क्या जवाब दे ? अब इस घटना का भयंकर अर्थ उसकी समझ में आया। उसने समझा, इतने दिनों के बाद उसके अतीत जीवन में यह थपेड़ा लगा है। तो भी वह पर्दा न उठा। अपने मन में ढूंढ़कर भी इस आदमी का कोई परिचय न मिल सका। किस तरह उससे उसका परिचय है, बीते जीवन में उससे उसका क्या सम्बन्ध था, वह कुछ भी नहीं जानता। चुप रहने के सिवाए उसे चारा क्या था !

वह आदमी कहता ही गया—एक ही माघ में जाड़ा नहीं कट जाता भैया, फिर कभी ज़रूरत पड़ेगी। खैर, ठहरे कहां हो ? रहने दो, ये खबरें पूछना ही गलत है तुम से। एक दिन मिलोगे तो ? तुम्हारा अपना भी लाभ ही होगा, नुकसान नहीं। हां, असली बात बता दूं, मैंने वह अड्डा बदल दिया है। वह है मेरी दूकान ! दूकान ही कर ली है भैया, बाहरी दिखावा तो कुछ चाहिए। दूकान में लोहे-लक्कड़ की सब चीजें मिलती हैं।

कनखी मारकर इशारा करते हुए बोला—लोहे-लक्कड़ की ज़रूरत हो तो भूल मत जाना ! आओगे न ?

'आऊंगा' कहकर प्रद्योत ने उससे पिंड छुड़ाया और आगे बढ़ा। उससे पिंड छुड़ाने की उसे हड़बड़ी क्यों थी, यह वह खुद भी नहीं जानता। इतने दिनों के बाद अपने भूले जीवन से वर्तमान का एक सेतु उसे मिला, जिसके सहारे अपनी खोई दुनिया को वह फिर से शायद आविष्कृत कर सके। और उसी सूत्र की वह अवहेलना करना चाहता है। क्यों आखिर ? इस सूत्र को पकड़ने की आकुलता की बात तो दूर, उसके अस्तित्व ने ही उसे इस कदर चंचल और शंकित कर दिया ! अपने मन में उसे इसका कोई साफ जवाब न मिला। लेकिन उसे डर हो गया, इसे अस्वीकार करने की गुंजाइश न थी। विस्मृति के पर्दे के पीछे क्या है,

उसे मालूम नहीं, परन्तु अब उसमें झांकने तक का साहस उसमें नहीं रहा, इच्छा भी नहीं। उसके अवचेतन मन की किसी सतर्क वाणी ने उसे जड़-सा बना दिया। पर्दे के इस पार उसके लिए कोई आकर्षण नहीं, न ही कोई शांति थी—थी केवल मरुभूमि की शून्यता ; फिर भी वह उस पार नहीं जाना चाहता। उसके अंतस्तल की कोई गूढ़ प्रेरणा ही उसे बाधा दे रही थी।

उसने उस आदमी की बात को भुलाना चाहा। जो कुछ देखा, जो परिचय मिला उससे वह आदमी ऐसा तो न था कि उसे खुशी से याद रक्खा जाए। ऐसे आदमी से उसकी जान-पहचान क्यों थी, वह यही नहीं समझ पा रहा था। और केवल परिचय ही क्यों, उससे उसकी खासी घनिष्ठता थी, उसकी बात से यह भी साफ ज़ाहिर हुआ। लेकिन यह संभव कैसे है ? शकल से आदमी का विचार करना शायद वाजिब नहीं, लेकिन इतना तो साफ है कि उसके संस्पर्श से मन आप ही संकुचित हो उठता है। उसके चेहरे और हाव-भाव में किसी काली कीचड़-सनी ज़िंदगी की छाया है। वह आम लोगों जैसा सहज जीवन नहीं बिताता है, उसे देखकर मन से इस संदेह को हटाया नहीं जा सकता। जहां धूप से जीवन का आलोकित पथ टेढ़ा-मेढ़ा होकर सुरंग के अंधेरे में उतर गया है, जहां सारा सत्य विकृत है, आशा और आनंद का अभाव है, उस आदमी के सर्वांग में उसी लोक की छाया है। ऐसे आदमी से उसका संपर्क होना बेशक आश्चर्यजनक है ! खैर, संपर्क चाहे जैसे भी हुआ हो, उसे भूलना ही ठीक है।

लेकिन कोशिश करने से ही भूला नहीं जाता। यह घटना प्रद्योत के पूरे मन पर गाढ़ी परछाईं डालकर जगी रही। किसी भी तरह छुटकारा नहीं मिला, उपेक्षा करने की गुंजाइश नहीं। हर पल यह घटना उसे रहस्य-मय इंगित करती रही। मन के घिरे प्रकोष्ठ में मानो कहीं अंधेरा चोर

दरवाज़ा हो। अभी वह दरवाज़ा कहीं खुल जाएगा और झलक पड़ेगा उसका खुला हुआ लुप्त जीवन। प्रद्योत को इसीका डर हो रहा था—एक अर्थहीन और गंभीर भय। तभी उस काले पर्दे के आगे खड़ा होकर हताश हो-हो उसने उसे हटाने की कोशिश की है और आज जी-जान से वह उसे ताने रहना चाह रहा है। उसके दो जीवनों के बीच जो सेतु अचानक प्रकट हुआ है, प्रद्योत उसे भुलाना चाहता है, न भुला पाने से ही उसकी अशांति की सीमा नहीं।

इसीलिए उसके मन में भीषण द्वंद्व चल रहा था। आसमान पर गाढ़े बादलों का पर्दा फैला था—वही मानो चंचल हो उठा था। वहां संघर्ष और हलचल शुरू हो गई थी। मानो पर्दा हटने की पूर्वसूचना हो।

प्रतिपल वह उद्विग्न रहता। कब किधर से द्वार खुल जाएगा, कौन जाने। किसे पता कि उसके खोये जीवन का कौन-सा सूत्र अचानक किधर से निकल पड़ेगा।

शायद इसी उद्वेग से कई दिनों से रात में वह अजीब-अजीब सपने देखता रहा है। शायद हो कि ये सपने निरे निरर्थक हों—याकि ये सब उसके पिछले जीवन के बिखरे टुकड़े हों, मन के गहरे अंधेरे कक्ष से खयाली हवा पर तिर आए हों। जो हो, ये सपने उसे और भी शंकित कर देते। उन सपनों से उसे अपना जो परिचय मिलता, यदि वह सत्य हो तो किसी भी हालत में प्रिय नहीं।

धीरे-धीरे यह द्वंद्व भी असह्य हो उठा। जागकर अपने ऊपर इस प्रकार से पहरा देना मुश्किल था। तमाम दिन ऐसे आतंक और आशंका में जीवन बिताने से दुःख की बात दूसरी नहीं। उससे तो इस अशांति को एकबारगी मिटा डालना ही बेहतर है। अपने को फिर से आविष्कृत करने की चोट जितनी ही सख्त क्यों न हो, अनिश्चयता की बेचैनी से छुटकारा मिल जाएगा। एक ही घटना हर घड़ी उसे बेचैन कर रही

थी। उसे बार-बार याद आता, इस शहर में एक आदमी उसके विलुप्त अतीत का सूत्र लिए इन्तज़ार में है। उससे जब कभी भी फिर भेंट हो सकती है। बाहर से तो उसे टाला जा सकता है, लेकिन अन्दर उसके इशारे की उपेक्षा किसी भी तरह नहीं की जा सकती। अन्त तक प्रद्योत ने तै किया कि वह जाएगा। वह यवनिका हिल उठी है। हट जाने से वह क्या देख पाएगा, पता नहीं हो सकता वह एक ऐसा भयंकर रूप हो जिसकी उसे उम्मीद ही न हो, या कि और कुछ हो—जो भी हो, अब उसे जाने विना भी उसे चैन नहीं। अब ऐसी अस्थिरता के लिए इस मरु-धूसर जगत् में भी उससे रहा नहीं जाता।

उस आदमी ने उसे अपनी दूकान की जगह बता दी थी। एक दिन तीसरे पहर प्रद्योत वहां पहुंचा। जाते-जाते उसने सब सोच लिया था कि पकड़ में आने से काम नहीं चलने का। वह ज़ाहिर नहीं होने देना चाहता कि अतीत उसकी याददाश्त से गायब है। अपना राज़ फाश किए बिना ही उससे अपना परिचय अदा करना होगा। दूसरों की चर्चा से प्रसंग बटोरकर अपनी भूली हुई जीवनी ढूंढ़ निकालनी पड़ेगी। लेकिन भाग्य या दुर्भाग्य से उससे भेंट नहीं हुई। दूकान के पास पहुंचकर उसे याद आया, उस आदमी का नाम वह नहीं जानता। उस रोज़ यह मौका नहीं आया। कुछ खरीदने के बहाने वह दूकान में दाखिल हुआ, परन्तु उस आदमी को न देखकर मानो वह आश्वस्त हुआ। फिर भी अपने मन को शांत करने के लिए और कुछ चाहिए था। इच्छा न रहते हुए भी उसने पूछा—इस दूकान के मालिक से कुछ ज़रूरत थी। आप बता सकते हैं, कब मिलेंगे वे ?

एक छोटी-सी चौकी पर सामने लकड़ी का बक्स रखे मोटे-से एक भले आदमी बैठे थे। उन्होंने ज़रा भवें सिकोड़कर कहा—मालिक से क्या ज़रूरत है ! आपको क्या चाहिए, बोलिए।

कुछ अप्रतिभ-सा होकर प्रद्योत बोला—मुझे उन्हींसे काम है।

—मैं ही मालिक हूं!—कहकर उस आदमी ने बड़े संदिग्ध ढंग से प्रद्योत को एड़ी-चोटी देखा।

उस निगाह से प्रद्योत को संकुचित हो जाना चाहिए था, लेकिन सहसा जाने किस कारण से उसका मन बड़ा हलका हो उठा। उसने उस निगाह को देखा ही नहीं। दूकान के मालिक को हक्का-बक्का बनाता हुआ बोल उठा—आप ही मालिक हैं!—और बिना किसी हिचक के दूकान से बाहर निकल पड़ा।

बाहर जाकर उसे लगा, एकाएक उसके मन की असह्य घुमड़ जाती रही है। वह आज़ाद है। आज तक वह यह सोचकर नाहक ही डरता रहा है कि अतीत की डरावनी छाया उसके पीछे लगी चलती है। सच ही तो, एक मामूली राहगीर के कहे उसे इतना सोच लेने का क्या कारण था? रास्ते के बहुत-से लोग गलती से चीन्हे-जाने-से लगते हैं। यही कौन कह सकता है कि उस आदमी ने भूल नहीं की। अपना गलत पता देकर उसने खुद ही अविश्वास का प्रमाण पेश किया है। हो सकता है, उससे कोई संपर्क ही न रहा हो—अपनी जीवन-धारा ही बिल्कुल अलग हो। उसके अतीत जीवन का सारा चिह्न ही शायद लुप्त हो गया है—उसका छिन्न सूत्र प्रकट होकर अब कभी उसके वर्तमान में विपर्यय की सृष्टि नहीं करेगा।

कई दिनों की दुश्चिंता के पाषाण-भार से मुक्त होकर आज पहली बार प्रद्योत सांझ को सवेरे-सवेरे मेस में दाखिल हुआ। लेकिन क्या पता था कि वहां भी एक विस्मय उसके इंतज़ार में बैठा है। सीढ़ियों से ऊपर जाते-जाते उसने एक उल्लास भरी पुकार सुनी—लाल भैया!

ताज्जुब! इतनी दूर दरवाक से विमल उसकी खोज में यहां आ पहुंचा है! ताज्जुब में सब से ज़्यादा पड़ा विमल खुद। इसीलिए इस

कल्पनातीत करतब को ऊंची आवाज़ में ऐलान करना उसके लिए नाजायज नहीं।

प्रद्योत ऊपर पहुंचे, इसकी अपेक्षा न करके विमल खुद उतर आया और बीच ही में वह प्रद्योत से लिपट गया। उसके बाद शुरू हो गई उसकी भ्रमरण-कहानी। और वह केवल भ्रमण-कहानी ही न थी, लाल भैया की इतने दिनों की अनुपस्थिति में उसके मन में बहुत-बहुत बातें जमा हुई थीं। घर से भी बहुत-सी बातें कहने का ज़िम्मा लेकर वह गया था। सारी बातों के योग ने इस भ्रमरण-कहानी को ज़रा जटिल और विचित्र कर दिया था।

प्रद्योत अचरज के पहले धक्के को संभाल ले, इससे पहले ही विमल ने बहुत कुछ कह दिया। दुनिया में समय की कमी का उसे खासा ज्ञान था। कौन जाने, समय के अभाव में बहुत-सी बातें अनकही ही रह जाएं। समय का अपव्यय वह नहीं कर सकता।

सीढ़ियां तै कर कमरे तक जाते-जाते एक सांस में वह जो कुछ कह गया, विषय के हिसाब से उसका बिभाजन करने से उसमें बहुत-से तथ्य थे; बिखरे-बिखरे तथ्य। लेकिन उससे क्या।

विमल ने बता दिया, रेल से कलकत्ता आने में उसे ज़रा भी डर न लगा। अवश्य यह पता न था कि कलकत्ता इतना बड़ा शहर है। फिर भी डरने की क्या बात! सहज ही तो उसने लाल भैया को ढूंढ़ निकाला! पता नहीं, मां और बड़ी दी' को उसकी शक्ति पर विश्वास क्यों नहीं है। लाल भैया इतने दिनों तक घर क्यों नहीं गए, विमल को तुरत इसकी सफाई चाहिए। इसीके लिए तो वह पहुंचा। कमल इधर बड़ा दुलरुवा हो गया है। कलकत्ता जाने के लिए इतना रोया कि पूछिए मत। यह समझना ही नहीं चाहता कि वह बच्चा है। इतने बड़े शहर में वह रास्ता पहचानकर यहां आ सकता? उसे साथ लाता तो कदम-कदम पर विमल

को ही आफत थी। और जब आ पहुंचा है तो चिड़ियाखाना और जादू-घर देखे बिना न लौटेगा।

सांस लेने के लिए विमल जरा रुका। इसी समय प्रद्योत ने पूछा—तुझे लोगों ने अकेला भेज दिया? भागकर तो नहीं आया है?

विमल उत्तेजित हो उठा—वाह, भाग क्यों आए भला। भागकर आता तो पैसे कहां मिलते? पैसे तो मां ने ही दिए। जानते हो लाल भैया, ट्राम के पैसे लेकिन बच गए। स्टेशन पर एक आदमी को तुम्हारा ठिकाना बताकर पूछा था न कि कौन-सी ट्राम से जाऊं। लेकिन मैं खुद भी चला आ सकता था। ट्राम से चलना कौन-सी बड़ी बात है। पैसे उसी भले आदमी ने दे दिए। मैं दे रहा था, हर्गिज न लिया। वे भी इधर ही आ रहे थे। इसीलिए उन्हींके साथ सवार हुआ। ट्राम से उतरकर इस मकान को मैंने अकेले ढूंढ़ निकाला! ढूंढ़ना बड़ी बात क्या है, रास्ते पर उमेश भट्टाचार्य लेन तो लिखा ही हुआ है।

विमल के बिखरे-बिखरे उच्छ्वास निकलते ही गए। लेकिन प्रद्योत का मन पछतावे से भर गया था। किस दुःख, किस निराशा से निरुपाय होकर मां ने अंत में कलकत्ते की विपदाओं के बीच इस नादान बालक को उसकी खोज के लिए भेजा है, यह समझना उसके लिए कठिन नहीं। उसे याद आया, इस बीच मां की चिट्ठी का उत्तर तक नहीं भेज सका है। विमल सकुशल आ पहुंचा, यह खुशकिस्मती है। लेकिन कुछ हो जाता तो वह अपने-आपको कैसे क्षमा करता।

अपने उच्छ्वास के बीच में ही विमल हंसकर पूछ बैठा—तबीयत खराब हो गई थी, न लाल भैया?

उसके बाद जवाब का इंतज़ार किए बिना ही कहने लगा—बड़ी दी' यही कह रही थीं। कह रही थीं, शायद बहुत ज़ोर से तबीयत खराब है। तबीयत खराब न होती तो एक खत डालकर वे खोज-खबर भी नहीं

लेते ! मैं भी यही सोच रहा था। कल लेकिन मुझे तो लौट जाना पड़ेगा। शाम-शाम तक जरूर। सुबह चिड़ियाखाना खुला रहता है न ?

प्रद्योत ने हंसकर कहा—रहता है। लेकिन कल तो तुम नहीं जा सकते !

विमल की भी इच्छा यही थी। इस मुसीबत से कलकत्ते जाकर एक ही दिन में लौट जाने की उसकी ख्वाहिश न थी। लेकिन अपनी ज़िम्मेदारी को वह कैसे भूल जाए ! उदास-सा बोला—कल ही लौट जाने को कहा है। इसीलिए तो भेजा है मुझे। वहां तो सब गड़बड़ी हो गई है !

प्रद्योत ने उद्विग्न होकर पूछा—गड़बड़ी कैसी ?

—जाने क्या ! छोटी दीदी का जब ब्याह न होगा, इसीसे वृथा निंदा-विंदा हुई है। अरे-रे, तुम्हें एक चिट्ठी भी तो दी है। भूल ही गया देना ! भाग्य कहो कि वह गुमी नहीं।—अपनी जेब टटोलकर विमल ने चिट्ठी निकाली।

चिट्ठी छोटी न थी, खासी लम्बी थी। मां को बहुत-सी बातें लिखनी पड़ी थीं, लिखाए बिना उपाय न था शायद।

पढ़ते-पढ़ते प्रद्योत का चेहरा धीरे-धीरे स्याह हो उठा। उसने सोचा था, उसकी गैर-हाज़िरी से ही मां बेचैन हो उठी हैं—निगरानी के अभाव में उन्हें काफी कठिनाई हो रही है, इसीलिए तथा प्रद्योत की सेहत के बारे में चिंतित होकर लाचार विमल को उन्हें भेजना पड़ा। वहां इतनी उलझनें पैदा हो गई हैं, इसकी उसने कल्पना तक न की थी। इस परिवार की मौजूदा सारी तकलीफों की जड़ एक प्रकार से वही है, यह सोचकर उसे और भी बुरा लगा। उनके जीवन में वह और अशांति ही ले गया। अपने जीवन के अभिशाप की छूत उसने इस परिवार पर लगा

दी है। अपने को वहां से हटा लेने का भी कोई लाभ नहीं हुआ, नतीजा बल्कि उलटा निकला।

बड़े दुःख के साथ सारा संकोच छोड़कर मां को सभी बातें लिखनी पड़ी हैं। गांव में उनका रहना ही दूभर हो उठा है। निर्मला की व्याह की बात बदल देने से ही शायद वह गड़बड़ी शुरू हुई। विना दहेज के ही वे लोग ब्याह करने को तैयार थे, इसलिए इस नट जाने को उन्होंने अपना अपमान समझा और उस अपमान का बदला चुकाने में भी देर न की। अच्छा पात्र पाने के बावजूद निर्मला की शादी में उसके परिवार के लोग राजी न हुए, इसकी बड़ी भद्दी-सी वजह बताकर उन लोगों ने उसे फैलाना शुरू किया। इस बीच यह बात इस बुरी तरह फैल चुकी कि उनको मुंह दिखाना मुहाल हो गया है। यहां तक कि लोग घर चढ़कर भी अपमान कर जाने में नहीं हिचकते। प्रद्योत की इतने दिनों तक वहां से गैरहाजिरी ने तो उनकी कल्पना को और भी खूराक दी है। उनकी भद्दी चर्चा का विषय है कि सगा-संबन्धी न होते हुए भी प्रद्योत उनका भरण-पोषण कर रहा है। उनकी उड़ान का केंद्र वही है। प्रद्योत की गैरहाज़िरी की उन्होंने ऐसी व्याख्या की है कि कान से सुनी नहीं जाती। मगर सुननी ही पड़ती है। जिन्होंने दूर की कौड़ी खींची है, सुनाए विना उन्हें चैन कहां। अपनी गरज़ से वे आ-जाकर सुना जाते हैं।

अंत में मां ने लिखा था, गांव में जैसी निन्दा फैली है, लगता है, निर्मला का ब्याह ही न हो सकेगा। सभी उनके खिलाफ हैं। वे बेसहारे हैं, इसलिए कोई उनकी तरफदारी को तैयार नहीं। और ऐसी आफत के समय तुमने भी किस कसूर से हमें छोड़ रक्खा है, समझ नहीं पाती। मां ने प्रद्योत से एक अन्तिम अनुरोध किया है—वह और कुछ करे चाहे न करे, कम से कम इस एक अनुरोध को रक्खे। एक दिन वे घर-द्वार बेंच-खोंचकर और कहीं चल देना चाह रही थीं। प्रद्योत ने रोका था।

अब लेकिन कोई उपाय नहीं। यहां से जो थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा मिल जाए, उससे किसी प्रकार मैके में पनाह मिल जाएगी। जब इस गांव में गुज़ारे का कोई उपाय नहीं रहा, तो इतना प्रबन्ध तो प्रद्योत उनके लिए कर दे। दरवाक में जो थोड़ी जगह-ज़मीन है, उसकी वाजिब कीमत से हम वंचित न हों, प्रद्योत इतना कम से कम देखे। हमें कोई क्षोभ नहीं। उसने जितना किया, अपनी संतान भी इतना कम करती है। इसके लिए आशीर्वाद।

हाथ में चिट्ठी लेकर प्रद्योत बड़ी देर तक गुम-सुम बैठा रहा। अमल बाबू के परिवार से विपत्ति के बादल कभी नहीं हटे। उसकी अपनी कोशिशें भी कारगर न हुईं। लेकिन उनके इस परिणाम को वह तैयार न था। इतनी दूर तक सोच भी न सका था। सब से बड़ा दुःख इस बात का था कि उनके इस परिणाम का ज़्यादा भागी वह खुद है। लेकिन अब वह कर क्या सकता है।

कर क्यों नहीं सकता! सारे आपद-विपदों में भाग्य-देवता का जो निर्देश है, उसे अब वह निःसंकोच ग्रहण कर सकता है। भय की, दुविधा की कोई बात नहीं। जहां नियति का निर्देश मिल गया है, वहां संकोच वह क्यों करे? समाज, संस्कार—सब का सम्मान बचाकर उसने खुद को वंचित करना चाहा था। अपने सत्य को अस्वीकार करके स्वतः निर्वासित होने की सारी पीड़ा उसने उठा ली थी। लेकिन अब तो इस आत्मनिग्रह का कोई अर्थ नहीं। किसकी इज़्ज़त करे वह! समाज के माने तो यही हैं। इसे एक असहाय परिवार के खिलाफ घिनौनी से घिनौनी साजिश करने में भी हिचक नहीं आती। इस समाज के चलते अपने जीवन के सत्य की वह क्यों बलि चढ़ाए? इस बलि से कल्याण किसका होगा? न निर्मला का होगा, न उसका। अपने खोए जीवन में वह क्या था, मालूम नहीं। न हो मालूम, उससे क्या आता-जाता है। उस

जीवन से उसका कोई संबंध भी नहीं। यह तो उसका नया जन्म है। वर्तमान ही उसका सत्य है और वर्तमान जीवन में वह किसी बात के लिए अयोग्य नहीं। आखिर वर्तमान जीवन का भी तो कुछ दावा है। सुख का, शांति का, नए सिरे से भविष्य-निर्माण का। जो अतीत मौत के अंधेरे में खो गया है, उसीके डर से सकुचाए बैठे रहने की जरूरत नहीं। अब वह नहीं डरेगा, अपने जीवन के सत्य को निडर होकर प्रतिष्ठित करेगा। मन का निर्देश जब भाग्यदेवता के निर्देश से मिल गया है, तो वह दुविधा से खड़ा न रहेगा।

निर्मला की ओर से जिस बाधा के बारे में उसे सोचना था, अब तो वह भी दूर हो गई है। वह इस बात से डर गया था कि कहीं उसके नाम से निर्मला के बारे में कोई शिकायत न फैले। डरने का अब कुछ न रहा। समाज ने स्वयं अपने हाथों से उनपर कालिख पोतने का बीड़ा उठाया है, किसी घटना की अपेक्षा नहीं रक्खी। अब निर्मला को ग्रहण करने से उस परिवार के सामाजिक सम्मान की वैसी कोई हानि न होगी। उनके नाम से पहले ही काफी अफवाहें उड़ाई जा चुकीं, यह अच्छा ही हुआ। परिस्थिति चारों तरफ से ऐसी जटिल न हो गई होती तो प्रद्योत को अपने सत्य की प्रतिष्ठा की प्रेरणा नहीं मिलती। अपने को वह इसी डर से दूर रख रहा था कि अपना स्वार्थ ही प्रधान न हो उठे।

सारी घटना-परम्परा में प्रद्योत को सचमुच ही भाग्यदेवता का निर्देश दिखाई दे रहा था। जब तक वह इस प्रभाव में बहता आया, तब तक उसके मन में दुविधा, शंका और द्वन्द्व का अन्त न था। इस प्रभाव के हर मोड़ पर वह डरता रहा है, हताश होता रहा है, संदेह की पेंगों में डोलता रहा है। उसे लगता रहा है, यह धारा बेमानी है; इसकी गति की कुटिलता का कोई उद्देश्य नहीं। उसके साथ यह मानो किसी कठोर खयाली देवता का कौतुक चल रहा है। लेकिन अब मानो उसे लक्ष्य

साफ दिखने लगा है। इस सारी घटना-परंपरा का अर्थ अब उसके सामने स्पष्ट हो उठा। भिन्न-भिन्न रास्तों में भटकाकर जीवन-देवता उसे यहां पहुंचाना चाह रहे थे। शायद इसीलिए उसके नए जन्म की ज़रूरत थी। सभी आश्रय, सारे सहारों को खोकर नए सिरे से वह अपने जीवन की सार्थकता तथा महिमा की खोज करे, जीवनदेवता का शायद यही अभिप्राय था।

चिट्ठी पढ़ने के बाद लाल भैया की शकल देखकर विमल को डर लगा था या नहीं, पता नहीं। लेकिन अब तक उसकी बोलती बंद-सी थी। अब उसने हिम्मत करके पूछा—तो कल ही चलोगे लाल भैया।

प्रद्योत ने हंसकर कहा—ज़रूर।

उसे अब कोई दुविधा न थी। अपनी राह उसे दिख गई थी।

१३

यह कहानी यहीं खत्म होती, तो अच्छा होता शायद। अपने बीते जीवन के पर्दे को उठाकर अब वह नहीं देखना चाहता, नए जीवन में अपने को कामयाब कर सकने का थोड़ा-सा मौका मिल जाए तो ठीक। यह मौका उसे मिले, हम भी शायद यही चाहते हैं। उसने बड़ी सख्त साधना की है, कीमत भी कुछ कम नहीं चुकाई। सचमुच ही अपने जीवन को बेखटके गढ़ने का उसने अधिकार हासिल किया है।

हम प्रद्योत की कल्पना एक छोटे से संसार में कर सकते हैं। शांत और आडंबरहीन जीवन-यात्रा। चूंकि आनंद गहरा है, इसलिए बाहर किसी तरह की चंचलता नहीं। उसीमें से वह हर पल जीवन के असीम रहस्य का स्वाद पाता चला जा रहा है। अब उसने यह जान लिया है कि जीवन को जानने के लिए किसी उद्भट साधना का, किसी असाधारण आयोजन का प्रयोजन नहीं। उसने यह जाना कि जीवन की सच्ची महिमा उल्का के उच्छृंखल गीत में नहीं, उसके शांत और संगतिमय छंद में है। सृष्टि का गूढ़तम अर्थ इसी छंद में समझ में आता है। अपने जीवन और अपनी दुनिया को प्रद्योत उसी छन्द में तैयार कर रहा है, हम लोग यह कल्पना कर सकते हैं।

हम यह मान सकते हैं कि वह दरवाक के उसी घर में है। उसकी बेपनाह ज़िंदगी को जिस परिवार ने जगह दी थी, उसके किसी व्यक्ति को भी वह छोड़ना नहीं चाहता। उसकी यह अपूर्व रचना सब को साथ लिये ही चल रही है। उसके बेखौफ और दृढ़ आचरण से गांव की तीखी और

जहरीली जीभ भी हार मानकर चुप हो गई है। इस परिवार पर अब संकट के बादल घिरे नहीं रहे।

बाहर से उसका जीवन शायद अब भी नहीं बदला—अभी भी पूरा हफ्ता कलकत्ते में बिताकर शनिवार की शाम को उत्सुकता लिए वह गाड़ी पर सवार होता। गाड़ी उसी जानी-चीन्ही राह को पुरानी कविता-सी दुहराती। स्टेशन पर उतरकर धुंधले अंधेरे में वह गांव का रास्ता तै करता। अब ये गांव वैसे अंतरंग मित्र-से न लगते हुए भी उसे स्निग्ध और शीतल लगते। हाथ में उसके एक छोटी-सी पोटली होती। उसमें कैसी-कैसी अनोखी चीजें होतीं, कौन जाने! शायद बड़ी दी' के बच्चों के लिए कुछ लेमनजूस, कमल के लिए रंगीन तस्वीरों की किताब, शायद विमल के लिए एक-दो फले की छुरी, गिरस्ती के लिए दुर्लभ नाज और शायद निर्मला के लिए दो-एक गज ज़र का फीता। किवाड़ पर थपकी देते न देते अब भी उत्सुक हाथों कुंडी खुल जाती और फिर शुरू हो जाती खुशी की हलचल।

दरवाक के उस घर का भी बेशक कुछ परिवर्तन हुआ है। दक्खिन वाले टूटे कमरे की मरम्मत हो गई। उसपर नए पत्तों की छौनी पड़ गई। अंदर से रोशनी दिखाई पड़ती। अपने दो उत्सुक हाथों से इसी दिन के इंतज़ार में निर्मला ने सब अच्छी तरह सजाया होता। साफ-सफेद बिछौना। अलगनी पर करीने से रक्खे कपड़े। मेज़ पर नई झकमकाती बत्ती। घर में सामान तो मामूली-सा, लेकिन सब पर एक कुशल हाथ की स्पष्ट छाप। बड़े चलिए के बरामदे पर बैठक होती। सिर्फ एक लड़की आधे घूंघट में ज़रा दूर-दूर रहती। दूर तो रहती, लेकिन उसके मन का उमगता आनंद दबा न रहता। दीदी कहतीं—बस, चाय तो आज तू रहने दे भई, ले बैठी न प्याले को!

दबी हंसी के साथ हलका कंठस्वर सुनाई पड़ता—नहीं नहीं, हाथ

से लगकर गिर गया ।

—आज तेरे हाथ से सब गिर जाएगा ! अच्छा, तू हट तो जा ।

इस अन्याय भरे मज़ाक के लिए निगाहों से 'बड़ी दी' को शासन करती हुई निर्मला गुस्सा पी-सी चली जाती, लेकिन कहीं ज़्यादा दूर नहीं ।

'बड़ी दी' के पुकारते ही जवाब मिलता । कहती—ले, प्रद्योत को चाय दे आ । मगर उस दिन की तरह प्याला मत फोड़ देना ।

—खूब कहा, उस दिन मेरा कसूर थोड़े ही था; मेरे पकड़ते न पकड़ते तुमने छोड़ क्यों दिया !

रात और ज़्यादा हो जाती । सूने गांव पर रात का आसमान ज्योति-लोक का रहस्य फैला देता । कमरे में निर्मला प्रद्योत से सटी-सी बैठी । घूंघट उघरा-सा, फिर भी चेहरा अधछिपे रहस्य से घिरा-सा । उसका सब कुछ जाना नहीं जा सकता, जाना जा भी न सकेगा कभी । चाहे जितनी दूर तक चला जाए प्रद्योत, उसका रहस्य कभी चुकने का नहीं और इसीमें प्रद्योत को तृप्ति थी । रात के आकाश का रहस्य-संकेत उसके जीवन में निर्मला ही ले आई थी ।

लेकिन यह कल्पना अभी रहे ।

इस कहानी के खत्म होने में थोड़ा-सा और बाकी है ।

विस्मृति के परदे को प्रद्योत ने शायद हटाना नहीं चाहा था, लेकिन अचानक ही अप्रत्याशित रूप से वह पर्दा हट गया और उसकी सारी कल्पनाएं, सारे संकल्प बिखर-से गए ।

दूसरे दिन वह विमल को लेकर शायद चिड़ियाखाना दिखाने जा रहा था । अचानक दरवाज़े पर किसीकी पुकार सुन उसने मुड़कर ताका ।

नियति की शायद ऐसी ही मरज़ी थी ; अचानक इसीलिए उसने

ताका, और ताका न सिर्फ पीछे की ओर, बल्कि अपने सारे विस्मृत जीवन की ओर।

देखा, रास्ते पर मेस के दरवाज़े के पास खड़ा एक आदमी उसकी तरफ देख रहा है। प्रद्योत उसे तुरत पहचान गया, इसलिए नहीं पहचाना कि कभी रास्ते पर अचानक उससे भेंट हुई थी, उसने उसे अपने पिछले परिवेश और इतिहास के साथ पहचाना—लहमे में वह पर्दा गायब हो गया। एक आदमी के परिचय ने मानो विस्मृति के कुहरे को हटाकर उसके मन के द्वार को अचानक खोल दिया।

प्रद्योत की नज़रों में उसी क्षण सारी दुनिया का रूप भी मानो बदल गया।

वह आदमी भौंडे मुंह से भद्दे ढंग से हंसकर बोला—चौंक गए, क्यों भैया ! मज़े में दुबके रहना चाह रहे थे, लेकिन मथुरराय की आंखों में धूल न झोंक सके। आखिर ढूंढ़ निकाला न ?

प्रद्योत बड़ी देर तक चुप खड़ा रहा और अंत में मानो बड़े कष्ट से बोला—क्या काम है, कहो ?

—काम ! काम न हो तो नहीं आना चाहिए ? पुरानी जान-पहचान से दो बातें करने को जी नहीं चाहता !

प्रद्योत फिर भी चुप रहा। मथुर ने फिर कहा—मुझे देखकर खास खुशी हुई है, ऐसा तो नहीं लगता। मगर मुझसे डर किस बात का भई ! किसी नए इरादे से हो, क्यों ! लेकिन जानते तो हो, मुझसे कोई बुराई नहीं होगी। आखिर मैं विष्णुपद तो हूं नहीं कि जरूरत पड़ने पर बहरा-गूंगा दोनों बन जाऊं।

इसे टालना मुश्किल था। हंसने की कोशिश करता हुआ प्रद्योत बोला—खैर, मगर मुझे गलत पता क्यों बताया था ?

—गलत नहीं, पता तो ठीक ही दिया था। लेकिन सावधान की

मौत नहीं। ज़माने से भेंट-मुलाकात नहीं हुई, इसीलिए पहले दिन चुप्पी साध ली। खैर, भेंट हो तो गई।

प्रद्योत ने ज़रा कुंठित-सा होकर कहा—और किसी दिन आना, आज मैं ज़रा व्यस्त हूं।

—यह तो मैं देख ही रहा हूं। लेकिन दो बातें सुन लेने में क्या बिगड़ जाएगा?

कतराने की कोई गुंजाइश नहीं। प्रद्योत ने विमल को ज़रा देर रुकने को कहा और उसके साथ हो लिया। मथुर ने हंसकर कहा—साथ में यह फिर कौन? कब किस जुगत में रहते हो, समझना मुश्किल!

प्रद्योत ने कोई जवाब न दिया।

थोड़ा इन्तज़ार करके मथुर असली बात पर उतरा। आवाज़ धीमी करके बोला—एक अच्छा-सा काम है, राज़ी हो तो बताओ। कोई झंझट झमेला नहीं। आधा-आधा हिस्सा।

एक बार प्रद्योत के चेहरे का भाव ताड़ने की कोशिश करके बोला—असली हीरे की खान का पता लगाया है, हां। अभी-अभी पर निकले हैं। बाप की दौलत मिली है, फूंकने का ज़रिया नहीं पा रहा है। अभी उसे सम्हाल लो तो कोई चिन्ता ही न रहे। पोखरा मेरा, बंसी मेरी—तुम्हें सिर्फ मछली फंसाकर ऊपर लाना है।

प्रद्योत कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—मैंने ये धंधे छोड़ दिए हैं।

—छोड़ दिया है!—अचरज से प्रद्योत की तरफ ताककर मथुर ठठाकर हंस पड़ा। उसकी वह हंसी थम नहीं रही थी—छोड़ सकते हो भला! बिल्ली भी कभी मछली छोड़ सकती है, छोड़ सकती है खीर अगर मिल जाए? खैर, तुम्हारी खीर तुम्हें ही मुबारक। ऊपर से कुछ मिल जाए तो क्या ऐतराज़? कसम खाकर कहता हूं, कोई हंगामा नहीं होगा।

जिम्मेदारी सब मेरी। राज़ी ?

प्रद्योत को लगा, अपने को संयत रखना मुश्किल है। उसके अन्दर कहीं आंधी उठी है, वह आंधी वेग से लंगर को बहा ले जाएगी। उन्मत्त की नाईं एक बार वह ज़ोर से चीख पाए तो राहत मिले।

फिर भी जी-जान से अपने को ज़ब्त करके शांत भाव से उसने कहने की कोशिश की —ऊहूं, मुझसे न बनेगा।

मथुर को इस जवाब की उम्मीद न थी। उसने ज़रा देर चुपचाप प्रद्योत की तरफ ताका और अचानक तीखे व्यंग्य में कहा—सुना, विष्णुपद जेल में अकेला ही है। बेचारे का कोई साथी नहीं।

अचानक ज़ोरों से चिल्लाकर प्रद्योत ने मथुर को हक्का-बक्का बना दिया—तुम चल दो। तुरत चल दो यहां से ! मैं कोई बात नहीं सुनना चाहता।

वह किसी तरफ देखे बिना तमतमाया चेहरा लिए लौट गया।

लेकिन यह उत्तेजना बेकार ही थी। मथुर को वह ज़बरदस्ती भगा सकता है, लेकिन परदे के पार का जो जीवन आज प्रकट हुआ, उसे तो आसानी से रुखसत नहीं किया जा सकता। मुंह फेरकर चले आने के बावजूद उसे छोड़ना मुमकिन नहीं। अब उसके नए जन्म वाले संसार पर भी विस्मृति के उस पार के जीवन की गहरी छाया आकर पड़ी। आंखें मूंदकर उस छाया को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। नहीं। अतीत की बाढ़ से उसके नाव का लंगर फिर टूट गया। किनारे का निश्चित आश्रय उसको बदा नहीं। उसे फिर लौटना ही पड़ेगा। पिछले जीवन का कर्ज़ बहुत है—वह कर्ज़ चुकाना ही पड़ेगा।

जीवन में पहले उसने कैसे ऐसी राह चुन ली थी, पता नहीं। शायद मामूली से प्रलोभन ने, शायद कुछ असाधारणता के लोभ ने उसे विचलित किया हो, लेकिन उसके बाद वह फिर रोक नहीं सका।

अपने उस आवेग से वह धीरे-धीरे बहता गया और अन्त तक बेबस की नाईं अतल अन्धेरे में उतर पड़ा। कोशिश करके भी फिर पलट खड़े होने की कोई गुंजाइश न थी। जोकि उसने उसी दिन यह समझ लिया था कि इस जीवन की न केवल सार्थकता नहीं, इसमें शांति भी नहीं। धीरे-धीरे उस दिन भी उसका मन उदास हो उठा था, वह अंधेरे और बांझ जीवन के किनारे से उस पार की स्निग्ध श्यामलता की ओर चला, जहां मनुष्य को प्रतिपल उत्तेजना की तीखी मदिरा के घूंट से जीवन की व्यर्थता को भूलना नहीं पड़ता—जहां सृष्टि की परम सार्थकता के लिए ही शांत स्रोत बहता है।

लौटने की चूंकि राह नहीं थी, इसीलिए उसने अपने-आपसे बदला चुकाया, वह और भी अतल गहराई में उतर गया। जो सुख-चैन की जिन्दगी बिताते हैं, और जो डरपोक की नाईं उत्तेजना का महज़ घूंट पीने को आते हैं उन सभी पर उसे आक्रोश था। उन्हें ठगना ही उस का व्यवसाय न था सिर्फ, विलास था। इसीलिए दिनोंदिन वह प्रचंड हो उठा। उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई।

कितने प्रकार से, कैसे-कैसे अजीबोगरीब ढंग से उसने लोगों को ठगा, हिसाब नहीं उसका। उसकी प्रतिभा को सही रास्ता न मिला, इसलिए बिगड़े रूप में ही उसका स्फुरण हुआ।

किसी एक जगह वह ज़्यादा दिन नहीं टिक सका, एक राह पर ज़्यादा दिन नहीं चल सका। उसके अन्दर की बेचैनी उसे नित्य नये क्षेत्र में घसीट ले गई। कभी किसी जुए के अड्डे में उसे बिठाकर किसी निरीह धनी संतान का सर्वनाश कराया, तो कभी और किसी गिरोह में शामिल हो पुलिस की आंख बचाकर नशीली चीज़ों का गुप्त व्यापार कराया।

उसका आखिरी कारनामा शायद जाली नोट चलाना था। बाहर इस कोशिश में उसे कामयाबी नहीं मिली, इसलिए छिपकर वह घर भागा

आ रहा था। अब की वह सहज ही नहीं भाग सका, इतने दिनों के बाद असली आफत से उसका सामना हुआ। उसका एक साथी गिरफ्तार हो चुका था। चारों ओर पुलिस का चौकस पहरा। नसीब की कृपा से किसी प्रकार वह उसमें से बच निकला था।

अब उसे कलकत्ता आने से पहले की सारी घटनाएं याद आईं। पच्छिम के किसी शहर से किसी प्रकार पुलिस के शिकंजे से बचकर वह गाड़ी पर सवार हुआ। फिर भी निश्चिंत न हो सका। हर घड़ी पकड़ा जाने का खतरा। बड़ी बेचैनी में उसे घड़ियां बितानी पड़ीं। कई जगह गाड़ियां बदलने के बावजूद वह खतरे से खाली न हो सका और यह उद्वेग तथा आशंका उसे असह्य हो गई। जीवन में दुस्साहस के बहुत से काम उसने किए, लेकिन इतना वह कभी नहीं डरा। उसे भी उस दिन यही महसूस हुआ था कि यह डर अत्यन्त अस्वाभाविक है, इसकी जड़ कोई बाहरी आफत नहीं, मानो उसके अन्तस् की किसी अतलस्पर्शी गुफा से, अन्धकार के गाढ़े स्रोत से निकलकर यह अहैतुक आतंक उसकी सारी चेतना को डुबाए दे रहा हो।

देर तक उसने इस आतंक से जूझने की चेष्टा की थी, इतना ही उसे याद है; उसके बाद कब विस्मृति की यवनिका उतर आई, नहीं मालूम।

लेकिन अतीत के इस कलंकित इतिहास को प्रद्योत अब अस्वीकार नहीं कर सकता क्या? उसका प्रायश्चित क्या पूरा नहीं हुआ! मन की इस कथा को भूलकर वह नए सिरे से जीवन-निर्माण का व्रत नहीं ले सकता?

ले सकता है, लेकिन उसके पहले उसे अतीत का कर्ज चुकाना पड़ेगा। कम से कम उसने तो इसीको श्रेय समझा। पिछले जीवन का प्रायश्चित

वह पूरा करेगा ; कोई देना बाकी न रक्खेगा। हो सकता है, देवता की नजरों में उसका प्रायश्चित पूरा हो चुका है, लेकिन मानवी दुनिया की निगाहों में वह अभी कर्जदार है। वह कर्ज वह अदा करेगा, जिसमें अतीत की कोई छाया उसके नए जीवन को विडंबित न करे। जिसमें किसी मथुरराय की प्रतिहिंसा का उसे डर न रहे।

समझा-बुझाकर प्रद्योत ने विमल को घर भेज दिया। विमल जाना न चाह रहा था। इसलिए नहीं कि उसकी कलकत्ता देखने की हविस पूरी नहीं हुई थी, बल्कि अपने शिशु मन के किसी एक अस्पष्ट संकेत से वह जाना नहीं चाह रहा था। तमाम दिन लाल भैया में जो अनोखे परिवर्तन होते रहे थे, उसकी निगाहों से भी न बच सके। लाल भैया ने कहा, वह उसके साथ नहीं चल सकेगा। कहा, कुछ काम है, उसे करके वह बाद में जाएगा। लेकिन इससे विमल को विश्वास नहीं हुआ। वह ठहर जाने के लिए अड़ गया ; साथ ही चलेगा। मगर इस बात में प्रद्योत सख्त था। लाचार विमल को जाना ही पड़ा।

स्टेशन में गाड़ी से बाहर मुंह निकालकर आंसू-रुंधे स्वर में विमल बोला—जानता हूं, सब झूठी बातें हैं। तुम अब नहीं आओगे लाल भैया!

शायद एक दिन और उसके कंठ से यही आशंका उठी थी। उसी दिन की तरह प्रद्योत ने आज फिर जवाब दिया—नहीं भैया, सच ही आऊंगा मैं। यहां का काम खत्म होते ही आऊंगा!

कौन कहे, विमल ने इसपर विश्वास किया या नहीं। लेकिन विश्वास करने में ही क्या नुकसान है!

हो सकता है, सचमुच ही प्रद्योत वहां लौट जाए और अपने अतीत जीवन का प्रायश्चित पूरा करके फिर से शुरू करे नए जीवन की रचना।

◇ ◇ ◇